मूल्य : ₹ 50

मार्च 2026

आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

प्राकृतिक खेती से सतत कृषि

बहुपयोगी अजोला का एकीकृत उत्पादन

सतत खेती हेतु संरक्षित जुताई एवं सिंचाई

धान की फसल में कम्पोस्ट टी का प्रयोग

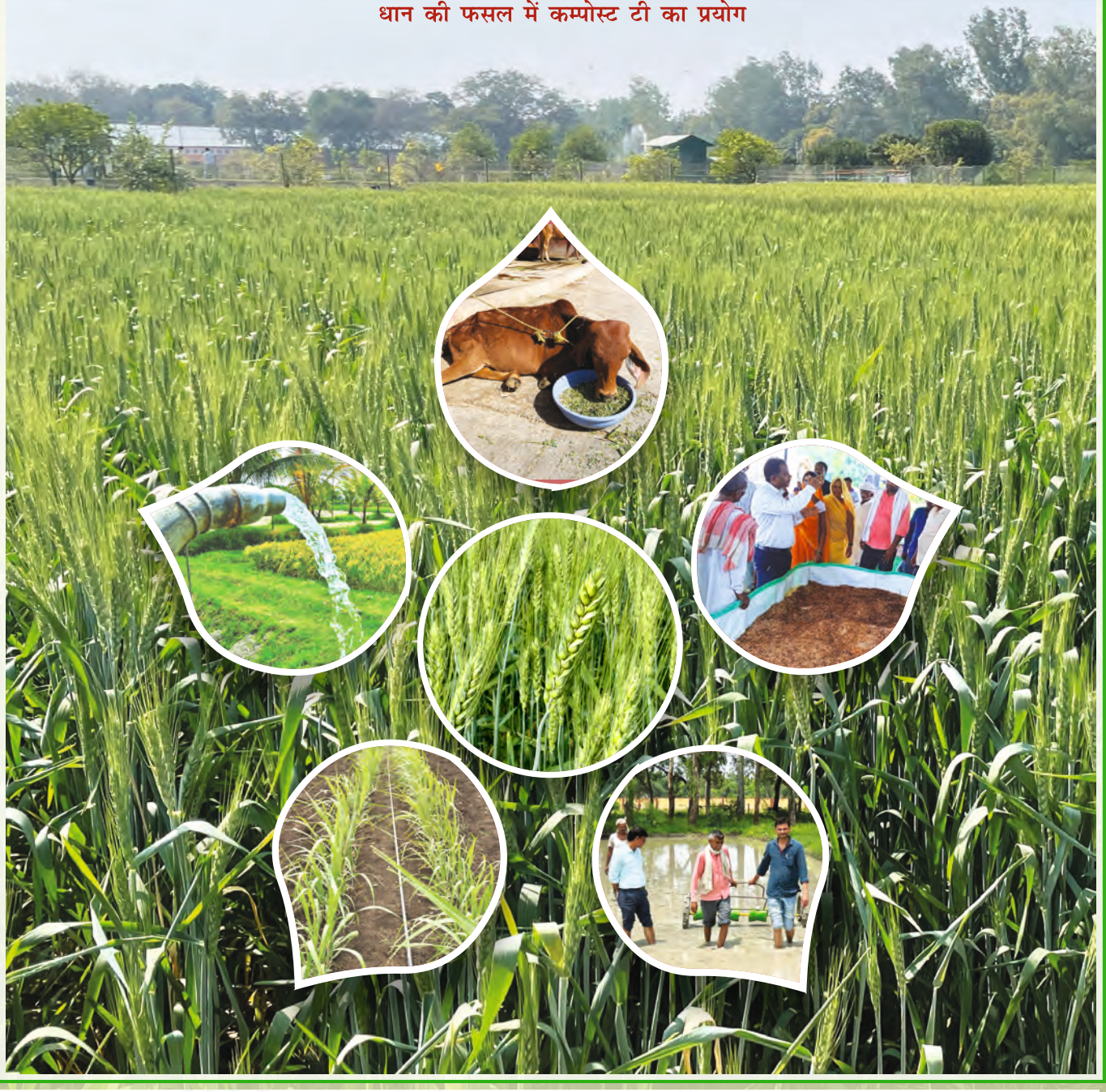

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

फसल अवशेषों से बने 'आंचल स्ट्रॉ आर्ट'

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में फसल अवशेष प्रबंधन एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया है। धान की पराली जलाने से पर्यावरण प्रदूषण, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट और मानव स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसी चुनौती को अवसर में बदलते हुए बिहार के जहानाबाद जिले के तेहता गांव की श्रीमती सुनीता देवी के नेतृत्व में 'आंचल' महिला समूह ने फसल अवशेषों से कलात्मक उत्पाद तैयार करने की अभिनव पहल शुरू की। इस पहल के अंतर्गत धान के भूसे से तैयार की जाने वाली 'आंचल स्ट्रॉ आर्ट' न केवल पर्यावरण संरक्षण में योगदान दे रही है, बल्कि ग्रामीण महिलाओं के लिए आय का स्थायी स्रोत भी बन रही है। यह नवाचार आत्मनिर्भरता, रचनात्मकता और सतत विकास के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आंचल स्ट्रॉ आर्ट मूलत: धान के भूसे से तैयार की जाने वाली एक विशिष्ट एप्लिक कला है। इस कला में स्वतंत्रता सेनानियों, देवी-देवताओं, ऐतिहासिक स्मारकों और सांस्कृतिक प्रतीकों की छवियों को उकेरा जाता है। इसमें रचनात्मकता के साथ-साथ पारंपरिक कला का आधुनिक प्रस्तुतीकरण दिखाई देता है। नवीनतम मौसम का भूसा मलाई रंग का होता है, जबकि एक वर्ष पुराना भूसा सुनहरे रंग का दिखाई देता है। रंगों के इस प्राकृतिक अंतर का उपयोग कलाकृति को आकर्षक बनाने में किया जाता है। इस कला को तैयार करने की प्रक्रिया में भूसे को साफ कर सुखाया जाता है, फिर उसे आवश्यक आकार में काटकर डिजाइन के अनुसार चिपकाया जाता है। किशमिश पेंटिंग तकनीक और मजबूत फ्रेमिंग के माध्यम से इसे दीर्घकालिक स्थायित्व प्रदान किया जाता है। उचित संरक्षण के साथ यह उत्पाद 20 वर्षों से अधिक समय तक अच्छी स्थिति में बना रह सकता है।

इस नवाचार की सूत्रधार श्रीमती सुनीता देवी हैं, जिनकी आयु 38 वर्ष है और शिक्षा स्तर इंटरमीडिएट है। पिछले पांच वर्षों से वे हस्तशिल्प आधारित आजीविका गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इनके नेतृत्व में गठित 'आंचल' महिला समूह ग्रामीण महिलाओं को संगठित कर उन्हें कौशल प्रशिक्षण, उत्पादन प्रक्रिया और विपणन से जोड़ता है। यह समूह सामूहिक सहभागिता के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने की दिशा में कार्य कर रहा है।

धान अवशेष से बना आकर्षक चित्र

प्रमुख विशेषताएं

इस पहल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता कृषि अपशिष्ट का रचनात्मक उपयोग है। जहां सामान्यत: धान का भूसा बेकार समझा जाता है, वहीं यहां उसे मूल्यवर्धित उत्पाद में बदला गया है। यह नवाचार महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देता है। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से इसका विस्तार हुआ है, जिससे सामूहिक उत्पादन और विपणन संभव हो सका है। इसके अतिरिक्त, यह मॉडल पर्यावरण संरक्षण के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। पराली जलाने की प्रवृत्ति में कमी लाकर यह पहल वायु प्रदूषण और कार्बन उत्सर्जन को घटाने में सहायक बन रही है।

आर्थिक एवं सामाजिक लाभ

'आंचल स्ट्रॉ आर्ट' से जुड़ी महिलाएं प्रति क्राफ्ट 700 से 3000 रुपये तक की अतिरिक्त आय अर्जित कर रही हैं। समूह के स्तर पर यह आय महिलाओं को सालाना 20,000 से 25,000 रुपये तक कमाने में सक्षम बना रही है। इससे परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार, बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया है।

पर्यावरणीय लाभ

यह नवाचार 'अपशिष्ट से समृद्धि' के सिद्धांत पर आधारित है। धान की पराली का उपयोग कर मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार करने से अपशिष्ट प्रबंधन की समस्या का समाधान मिलता है। इससे खेतों में पराली जलाने की आवश्यकता कम होती है, जिससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है और पर्यावरण प्रदूषण में कमी आती है। यह पहल सतत कृषि और हरित अर्थव्यवस्था के लक्ष्यों के अनुरूप है।

वैज्ञानिक पुष्टिकरण

यद्यपि यह कला दीर्घकालिक उपयोग के लिए उपयुक्त मानी जाती है, फिर भी भूसा-आधारित उत्पादों के स्थायित्व और गुणवत्ता के वैज्ञानिक पुष्टिकरण की आवश्यकता है। मौसम के प्रभाव, नमी प्रतिरोध और दीर्घकालिक संरक्षण तकनीकों पर शोध कर इसे और अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है। इससे बाजार में उत्पाद की विश्वसनीयता और स्वीकार्यता बढ़ेगी।

यह नवाचार महिलाओं को प्रशिक्षित कर महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देता है। इसके साथ ही अपशिष्ट प्रबंधन, फसल अवशेष प्रबंधन, हस्तशिल्प और सांस्कृतिक कला के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह मॉडल ग्रामीण विकास, पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक सशक्तिकरण को एक साथ जोड़ता है। ■

हुनर से रच रही आत्मनिर्भरता की नई राह

संभावनाएं

'आंचल स्ट्रॉ आर्ट' की मांग स्थानीय बाजारों के साथ-साथ अंतर-राज्यीय और राज्य के भीतर व्यापार में भी बढ़ रही है। प्रदर्शनियों, मेलों और हस्तशिल्प बाजारों के माध्यम से इस उत्पाद को पहचान मिल रही है। ई-कॉमर्स प्लेटफार्म के माध्यम से इसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुंचाया जा सकता है। भविष्य में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से अधिकाधिक महिलाओं को इस पहल से जोड़ा जा सकता है। इससे उत्पादन क्षमता बढ़ेगी और रोजगार के नए अवसर सृजित होंगे। ग्रामीण भारत में लघु उद्यम और स्वयं सहायता समूह आधारित मॉडल के रूप में यह नवाचार व्यापक स्तर पर अपनाया जा सकता है।

(स्रोत: विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 78, अंक: 11, मार्च 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   संपादक, हिन्दी संपादकीय एकक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 500.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय-सूची

निदेशक की कलम से — कृषि बजट वर्ष 2026 आत्मनिर्भरता की रणनीति, **अनुराधा अग्रवाल**

4 आधार

प्राकृतिक खेती से सतत कृषि
आराधिका त्रिपाठी, चन्द्र प्रकाश **और** संदीप कुमार

7 पोषण

बहुपयोगी अजोला का एकीकृत उत्पादन
नूपुर शर्मा, जगदीश प्रसाद तेतरवाल, वर्षा गुप्ता **और** बी.एल. मीणा

10 दृष्टिकोण

सतत खेती हेतु संरक्षित जुताई एवं सिंचाई
ऋचा जसवाल

13 जैविक

धान की प्राकृतिक खेती
आलोक कुमार सिंह, दिग्विजय सिंह, रत्नेश कुमार झा, हर्षिता सिंह **और** श्रीपति द्विवेदी

16 प्रभावी

त्वरित कंपोस्टिंग तकनीक से फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण
अनुप्रिया यादव **और** वेल्लाइचामी मागेश्वरन

19 उर्वरता

धान की फसल में कम्पोस्ट टी का प्रयोग
सौरव चौरसिया, श्रद्धा यादव **और** ए.के. सिंह

विषय-सूची

22 **पहल**

सशक्तिकरण की दिशा में विकसित कृषि संकल्प अभियान

शुभ्रांशु सिंह, पुष्पेन्द्र यादव, रोहन सेरावत **और** सुनील कुमार तिवारी

25 **मात्स्यिकी**

मौसम पूर्वानुमान आधारित मत्स्य पालन की उपयोगिता

वेद प्रकाश, कीर्ति सौरभ, आरती कुमारी, राकेश कुमार **और** योगेश कुमार

28 **पशुपालन**

तनावग्रस्त गायों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका

नीलम कुशवाहा

31 **विश्लेषण**

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

प्रीति उपाध्याय, निर्मल पाण्डेय, राम कुमार जाट **और** मनीष विश्वकर्मा

33 **कृषि कैलेण्डर**

मार्च के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, अंजली पटेल, विनय उपाध्याय, एस.एस. राठौर **और** प्रवीण कुमार उपाध्याय

नवाचार

आवरण II

फसल अवशेषों से बने 'आंचल स्ट्रॉ आर्ट'

सामयिक

आवरण III

कृषि खबरें, देश-विदेश की

कृषि बजट वर्ष 2026 आत्मनिर्भरता की रणनीति

भारतीय अर्थव्यस्था की रीढ़ कही जाने वाली कृषि के लिए वर्ष 2026 का बजट बेहद महत्वपूर्ण है। कृषि केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि इसे आधुनिक, लाभकारी और टिकाऊ उद्यम के रूप में विकसित करना प्राथमिकता है। बदलती जलवायु, किसानों की आय में अस्थिरता और वैश्विक खाद्य संकट की आशंकाओं के बीच यह बजट कई नई संभावनाओं के द्वार खोलता है। यह बजट कृषि को उत्पादन केंद्रित मॉडल से मूल्य केंद्रित मॉडल की ओर ले जाने का प्रयास करता है।

बजट 2026 में कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के लिए आबंटन में उल्लेखनीय वृद्धि की गई है। पशुपालन, डेरी और मत्स्यपालन को भी मुख्य कृषि रणनीति का हिस्सा बनाया गया है, जिससे किसानों की आय के विविध स्रोत विकसित हों।

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना को जारी रखा गया है और प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को वर्ष 2026 में डेटा आधारित योजना के रूप में पुनः पेश किया गया है। इससे किसानों का बीमा प्रणाली पर विश्वास बढ़ने और बीमा कवरेज के विस्तार की संभावना है। इसमें ड्रोन और सैटेलाइट से फसल नुकसान का आकलन, एआई आधारित क्लेम प्रोसेसिंग और बीमा भुगतान की समय सीमा तय कर दी गई है। इसमें फसल बीमा योजना को तकनीक आधारित बनाकर अधिक पारदर्शी और प्रभावी बनाने की घोषणा की गई है।

इस बजट की सबसे बड़ी विशेषता डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन को गति देना है। किसानों के लिए डिजिटल भूमि रिकार्ड, फसल डेटा और बाजार सूचना को एक मंच पर लाने की घोषणा की गई है। इससे किसान बेहतर निर्णय ले सकेंगे और बिचौलियों पर निर्भरता कम होगी, साथ ही स्मार्ट खेती से लागत घटेगी और उत्पादकता बढ़ेगी।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को देखते हुए इस पर सिंचाई और जल संरक्षण पर विशेष जोर दिया गया है। सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप और स्प्रिंक्लर) को बढ़ावा देने के लिए अतिरिक्त सब्सिडी की घोषणा की गई है। इससे जल की बचत के साथ-साथ फसल की गुणवत्ता और उत्पादन में सुधार होगा। इसका लक्ष्य है 'पर ड्रॉप मोर क्रॉप'।

प्राकृतिक और जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए विशेष मिशन की घोषणा की गई है। रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करने और मृदा की सेहत सुधारने के लिए यह कदम महत्वपूर्ण है। इससे न केवल किसानों की लागत घटेगी, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और स्वास्थ्य सुरक्षा भी सुनिश्चित होगी।

कृषि अवसंरचना कोष के माध्यम से भंडारण, शीतश्रृंखला और प्रसंस्करण इकाइयों के विकास पर बल दिया गया है। इससे फसल के बाद होने वाले नुकसान में कमी आयेगी और किसानों को बेहतर प्राप्त होगा। कृषि आधारित स्टार्टअप्स और किसान उत्पादक संगठनों को सस्ती ऋण सुविधा देकर ग्रामीण रोजगार सृजन को बढ़ावा दिया गया है। कृषि को युवाओं के लिए आकर्षक क्षेत्र बनाने की दिशा में कौशल विकास और एग्री-टेक स्टार्टअप्स को समर्थन दिया गया है। वहीं, महिला किसानों के लिए स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से वित्तीय सहायता और प्रशिक्षण पर जोर दिया गया है।

कृषि बजट 2026 में कई सकारात्मक पहलें हैं, लेकिन सबसे बड़ी चुनौती नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन की रहेगी। जमीनी स्तर पर लाभ तभी पहुंचेगा जब छोटे किसानों तक तकनीक और जानकारी की पहुंच सुनिश्चित हो। यह बजट परंपरागत खेती और आधुनिक तकनीक के बीच सेतु बनाता है। यह किसान को केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि कृषि उद्यमी के रूप में स्थापित करने की दिशा में बढ़ता कदम है। यह बजट भारतीय कृषि को आत्मनिर्भर, टिकाऊ और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने में महत्वपूर्ण है।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

प्राकृतिक खेती से सतत कृषि

आराधिका त्रिपाठी, चन्द्र प्रकाश और **संदीप कुमार**

"भारत की कृषि व्यवस्था प्राचीन समय से प्रकृति पर आधारित रही है। पहले किसान स्थानीय संसाधनों, पशुपालन और परंपरागत ज्ञान का उपयोग करके खेती करते थे। उस समय रासायनिक खाद एवं दवाइयों का उपयोग नहीं के बराबर था। इससे मृदा, जल एवं पर्यावरण संतुलित बने रहते थे। लेकिन समय के साथ रासायनिक खादों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग शुरू हुआ। इससे उत्पादन बढ़ा, लेकिन मृदा की उर्वरता घटने लगी, भूमिगत जल स्तर गिरा और पर्यावरण प्रदूषण बढ़ा। आज समय की मांग है कि ऐसी कृषि पद्धति अपनाएं जो उत्पादन के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण और किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने में मदद करें। इसी संदर्भ में प्राकृतिक खेती एक प्रभावी विकल्प के रूप में सामने आई है। यह पद्धति मुख्यत: खेत पर उपलब्ध संसाधनों पर आधारित है, जिसमें गोबर तथा गौमूत्र से बने घोलों का उपयोग, फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण, मल्चिंग द्वारा नमी संरक्षण, मृदा की गुड़ाई तथा रासायनिक आदानों का बहिष्कार शामिल है। भारत सरकार ने इसे प्रोत्साहित करने के लिए परम्परागत कृषि विकास योजना के तहत भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति कार्यक्रम शुरू किया है, जिसका उद्देश्य पारंपरिक कृषि ज्ञान को पुनर्जीवित करना और बाहरी रासायनिक आदानों पर निर्भरता घटाना है।"

प्राकृतिक खेती एक समन्वित एवं रसायनमुक्त कृषि प्रणाली है, जो परंपरागत कृषि ज्ञान और पारिस्थितिकीय सिद्धांतों पर आधारित है। यह पद्धति फसलों, वृक्षों और पशुधन को कार्यात्मक जैव विविधता के साथ एकीकृत कर उत्पादन क्षमता बढ़ाने, मृदा स्वास्थ्य सुधारने और जल संरक्षण सुनिश्चित करने में सहायक है।

प्राकृतिक खेती को एक लागत प्रभावी एवं दीर्घकालिक रूप से व्यवहार्य विकल्प माना जाता है। यह पद्धति किसानों की बाहरी रासायनिक आदानों पर निर्भरता घटाने के साथ ग्रामीण आजीविका में योगदान देती है। इसका मूल दर्शन 'प्रकृति के साथ सामंजस्य' है, जो खाद्य सुरक्षा, पर्यावरणीय संतुलन, ग्रामीण पुनरुत्थान और सतत विकास को सुदृढ़ करता है।

यह प्रणाली मृदा की सेहत सुधारने, जल संरक्षण, उत्पादन बढ़ाने और लागत घटाने के साथ-साथ पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित बनाए रखती है। वर्तमान में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात और केरल में इसे बड़े पैमाने पर अपनाया जा रहा है। यह कदम सतत कृषि की दिशा में महत्वपूर्ण है और सरकार के मिशन को बल देता है। इसके तहत आत्मनिर्भर और पर्यावरणीय दृष्टि से सशक्त भारत का निर्माण हो रहा है, साथ ही किसानों को सशक्त कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई गति दी जा रही है।

प्राकृतिक खेती का अर्थ है: प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग कर, बिना रासायनिक खाद और कीटनाशक के खेती करना। इसमें मृदा, जल, हवा, पशु और पौधों के बीच प्राकृतिक संतुलन बनाए रखा जाता है। इसे 'फुकुओका विधि' भी कहा जाता है, जिसे

भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, कटराई, कुल्लू-175129 (हिमाचल प्रदेश)

पहल

- **आंध्र प्रदेश:** इस राज्य को प्राकृतिक खेती का मॉडल राज्य माना जाता है। राज्य सरकार ने आंध्र प्रदेश कम्युनिटी मैनेज्ड नेचुरल फार्मिंग कार्यक्रम शुरू किया है। इसका लक्ष्य वर्ष 2030 तक पूरे राज्य को 100 प्रतिशत प्राकृतिक खेती वाला बनाना है। अनंतपुर जिले के किसान श्री रामुलु ने प्राकृतिक खेती अपनाई। पहले प्रति एकड़ धान की खेती में लगभग 18,000 रुपये खर्च होते थे, जबकि प्राकृतिक खेती से लागत घटकर 6,000 रुपये रह गई।
- **कर्नाटक:** यहां किसानों के बीच जैडबीएनएफ बड़े पैमाने पर लोकप्रिय हुआ। राज्य सरकार ने श्री सुभाष पालेकर के मार्गदर्शन में कई प्रशिक्षण और जागरूकता अभियान चलाए।
- **हिमाचल प्रदेश:** राज्य की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि और बागवानी पर आधारित है। लगभग 90 प्रतिशत किसान छोटे और सीमांत हैं, जो पहाड़ी ढालों और सीमित जोत पर खेती करते हैं। प्राकृतिक खेती खुशहाल किसान योजना के तहत अपनाई गई। पांगी घाटी (चंबा जिला) को राज्य का पहला प्राकृतिक खेती उपमंडल घोषित किया गया।
- **उत्तर प्रदेश:** गंगा नदी के तटीय 27 जिलों में प्राकृतिक खेती को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया है। योजना के तहत नदी से 10 कि.मी. के दायरे में रासायनिक खाद और कीटनाशक का उपयोग बंद किया गया। 1,000 से अधिक गांवों में यह पद्धति लागू हो चुकी है, जिससे नदी प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सके।

जापानी कृषि वैज्ञानिक मासानोबू फुकुओका ने विकसित किया।

प्राकृतिक खेती एक बंद प्रणाली है, जो स्थानीय परिस्थितियों का लाभ उठाकर प्रकृति की नकल करती है और बाहरी मानवीय निवेश की आवश्यकता नहीं होती। यह पुनर्योजी कृषि

प्राकृतिक पोषण से स्वस्थ उपज

सारणी: रासायनिक बनाम प्राकृतिक खेती

पहलू	रासायनिक खेती	प्राकृतिक खेती
उत्पादन लागत	अधिक (उर्वरक, कीटनाशक, बीज)	कम (स्थानीय संसाधन आधारित)
मृदा की गुणवत्ता	धीरे-धीरे कम होती है	लगातार बेहतर होती है
जल उपयोग	अत्यधिक	20-30 प्रतिशत कम
खाद्य गुणवत्ता	अवशेषयुक्त, पोषक तत्व घटते हैं	विश्मुक्त, विटामिन और एंटी ऑक्सीडेंट अधिक
किसानों की स्थिति	बाहरी निवेश पर निर्भरता	आत्मनिर्भर, कम खर्च
पर्यावरणीय प्रभाव	प्रदूषण, कार्बन उत्सर्जन अधिक	कार्बन संचयन, प्रदूषण कम

और एग्रोइकोलॉजी को समर्थन देती है, जिसमें सूक्ष्मजीवों की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक खेती की मुख्य तकनीकें जैसे-गोबर, गौमूत्र, बीजामृत, जीवामृत, घनजीवामृत, व्हाप्सा और मल्चिंग का प्रयोग किया जाता है।

विशेषताएं

प्राकृतिक खेती से मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है, रसायनमुक्त उत्पादन होता है, जैव विविधता का संरक्षण, जल संसाधनों की सुरक्षा, कम उत्पादन लागत तथा किसानों की आय एवं पर्यावरणीय स्थिरता में सुधार होता है।

चुनौतियां

शुरुआती वर्षों में उत्पादन में कमी की आशंका रहती है। मृदा को रसायनों के लंबे उपयोग के बाद पुनर्जीवित होने में समय लगता है। इस संक्रमण काल में आमदनी घट सकती है, जिससे आर्थिक असुरक्षा का आभास होता है।

प्रशिक्षण और तकनीकी जानकारी की

बिना रसायन भरपूर उत्पादन

कमी के कारण अधिकांश किसानों के पास व्यावहारिक प्रशिक्षण का अभाव है और अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं।

बाजार व्यवस्था की कठिनाई के कारण संगठित बाजार और वितरण चैनलों की कमी है, जिससे किसानों को उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है।

नीतिगत और वित्तीय सहयोग के अभाव में सरकारी योजनाओं का लाभ सीमित रूप से पहुंच पाता है।

सरकारी योजनाएं

- **परंपरागत कृषि विकास योजना:** केंद्र सरकार की यह योजना प्राकृतिक व जैविक खेती के लिए है। इसके अंतर्गत राज्यों को प्राकृतिक खेती अपनाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है।
- **भारतीय प्राकृतिक खेती पद्धति कार्यक्रम:** पारंपरिक कृषि पद्धतियों और खेत में उपलब्ध जैव संसाधनों पर आधारित खेती को प्रोत्साहित करने हेतु यह योजना चलाई जा रही है। वर्ष 2020-21 में बीपीकेपी के अंतर्गत 2.84 लाख हैक्टर क्षेत्र कवर किया गया। इसमें आंध्र प्रदेश, केरल, छत्तीसगढ़, झारखंड और हिमाचल प्रदेश शामिल हैं।
- **पूर्वोत्तर मिशन:** जैविक और प्राकृतिक उत्पादों की मूल्य श्रृंखला विकास करना।

प्राकृतिक खेती के प्रमुख घटक

भारत की कृषि परंपरा सदियों से प्रकृति और स्थानीय संसाधनों पर आधारित रही है। हरित क्रांति ने खाद्य उत्पादन में वृद्धि की, लेकिन रासायनिक खादों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग ने मृदा की उर्वरता, जल स्रोतों और पारिस्थितिक संतुलन को गंभीर क्षति पहुंचाई। इस परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक खेती न केवल पर्यावरण मित्र विकल्प है, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने और उपभोक्ताओं को सुरक्षित आहार उपलब्ध करवाने की दिशा में भी महत्वपूर्ण है।

प्राकृतिक खेती केवल एक पद्धति नहीं, बल्कि यह किसानों की आत्मनिर्भरता, उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण का संगम है। सफलता गाथाएं, तुलनात्मक आंकड़े और सरकारी योजनाएं दर्शाती हैं कि उचित प्रशिक्षण, बाजार सहयोग और वित्तीय प्रोत्साहन मिलने पर वर्ष 2030 तक भारत कृषि में वैश्विक आदर्श बन सकता है। प्राकृतिक खेती की तकनीकें जैसे-जीवामृत, बीजामृत, मल्चिंग और व्हापसा खेत की उर्वरता पुनर्जीवित करती हैं, उत्पादन लागत घटाती हैं और कार्बन उत्सर्जन कम करके जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक होती हैं।

यही कारण है कि आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश ने इसे नीति और योजनाओं के माध्यम से अपनाया है। भविष्य में भारत की बढ़ती जनसंख्या, खाद्य सुरक्षा, निर्यात बाजार और जलवायु संकट जैसी चुनौतियों का समाधान प्राकृतिक खेती जैसी टिकाऊ पद्धतियों में निहित है। ■

संभावनाएं

प्राकृतिक खेती आने वाले समय में भारतीय कृषि की दिशा बदलने की क्षमता रखती है। वर्तमान परिदृश्य में जब देश बढ़ती जनसंख्या, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरणीय चुनौतियों और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब इस पद्धति का महत्व बढ़ जाता है।

- **बढ़ती जनसंख्या और खाद्य सुरक्षा:** भारत विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है, जहां खाद्य उत्पादन पर दबाव बना हुआ है। पारंपरिक रासायनिक खेती लंबे समय तक सहायक रही, किंतु इससे मृदा स्वास्थ्य और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ऐसे में प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ विकल्प प्रस्तुत करती है, जो उत्पादन बनाए रख सकती है और मृदा उर्वराशक्ति को संरक्षित करती है।
- **निर्यात बाजार की संभावनाएं:** विश्वभर में जैविक और प्राकृतिक उत्पादों की मांग बढ़ रही है। यूरोप, अमेरिका और खाड़ी देशों के उपभोक्ता विषमुक्त आहार को प्राथमिकता दे रहे हैं। भारत यदि प्राकृतिक खेती अपनाता है, तो वैश्विक बाजार में मजबूत स्थान बना सकता है और किसानों की आय में लाभ होगा।
- **जलवायु परिवर्तन और मृदा क्षरण से निपटना:** रासायनिक खेती से मृदा की गुणवत्ता प्रभावित हुई है और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन बढ़ा है। प्राकृतिक खेती उत्सर्जन कम करने, मृदा क्षरण, जल प्रदूषण और जैव विविधता के ह्रास से निपटने का साधन है।
- **प्रशिक्षण और बाजार सहयोग की आवश्यकता:** प्राकृतिक खेती के विस्तार के लिए किसानों को प्रशिक्षण, तकनीकी सहयोग और बाजार उपलब्धता आवश्यक है। सरकार और निजी क्षेत्र मिलकर प्रोत्साहन दें, तो यह पद्धति मुख्यधारा कृषि प्रणाली का हिस्सा बन सकती है।

बहुपयोगी अजोला का एकीकृत उत्पादन

नूपुर शर्मा[1], जगदीश प्रसाद तेतरवाल[2], वर्षा गुप्ता[3] और **बी.एल. मीणा[4]**

"अजोला एक तैरने वाली जलीय फर्न है, जो नील-हरित शैवाल के साथ सहजीवी संबंध स्थापित कर वायुमंडलीय नाइट्रोजन का जैविक स्थिरीकरण करती है। तीव्र वृद्धि, उच्च नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता तथा शीघ्र अपघटन गुणों के कारण अजोला जैव उर्वरक, हरी खाद एवं पशु आहार के रूप में अत्यंत उपयोगी मानी जाती है। अनुकूल परिस्थितियों में अजोला फसलों को पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन उपलब्ध कर मृदा की उर्वराशक्ति में सुधार, फसल उत्पादकता में वृद्धि तथा पर्यावरणीय स्थिरता बनाए रखने में सहायक होती है। धान की खेती में अजोला का उपयोग दोहरी फसल, हरी खाद एवं खरपतवार नियंत्रण के रूप में प्रभावी पाया गया है, जिससे रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है। इसके अतिरिक्त, अजोला प्रोटीन, खनिज तत्वों एवं आवश्यक अमीनो अम्ल से समृद्ध होने के कारण पशुपालन एवं मत्स्य पालन में भी लाभकारी सिद्ध होती है। इस प्रकार अजोला आधारित कृषि प्रणाली टिकाऊ, कम लागत वाली एवं पर्यावरण अनुकूल उत्पादन प्रणाली के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।"

अजोला के सफल, सतत एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए स्वच्छ जल, उपयुक्त अम्ल-क्षार संतुलन (पी-एच) तथा अनुकूल तापमान अत्यंत आवश्यक होते हैं। ये सभी कारक अजोला की वृद्धि दर, नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता एवं समग्र जैव उत्पादकता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

[1]विषय विशेषज्ञ, [2]प्राध्यापक, [3]सहायक प्राध्यापक, सस्य विज्ञान; [4]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

अजोला की अच्छी वृद्धि के लिए जल की गहराई 10-15 सें.मी., पी-एच मान 6-7, तापमान 18-28 डिग्री सेल्सियस तथा आंशिक छाया को उपयुक्त माना जाता है। जल की गहराई 15 सें.मी. से अधिक या 2 सें.मी. से कम होने पर अजोला की वृद्धि प्रभावित होती है। इसी प्रकार पीएच 3.5 से कम या 10 से अधिक होने पर अजोला जीवित नहीं रह पाती। तापमान 18 डिग्री सेल्सियस से कम या 35 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने पर वृद्धि दर में कमी आ जाती है, जबकि 45 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान पर अजोला नष्ट हो जाती है। बहुत कम प्रकाश अथवा अत्यधिक सीधा सूर्य प्रकाश भी इसकी वृद्धि के लिए हानिकारक होता है।

अजोला उत्पादन हेतु प्लास्टिक शीट से आच्छादित स्थायी अथवा अस्थायी गड्ढों का निर्माण किया जाता है। गड्ढों का अनुशंसित आकार लगभग 4 मीटर लंबा, 2.5 मीटर चौड़ा तथा 20-30 सें.मी. गहरा होता है। गड्ढे में लगभग 2-3 सें.मी. मोटी महीन मिट्टी की परत बिछाकर उसमें 10-15 सें.मी. तक

समन्वित प्रणाली

अजोला आधारित धान-बत्तख-मछली सहजीवी कृषि प्रणाली एक समन्वित एवं सतत उत्पादन प्रणाली है, जिसमें सभी घटक परस्पर पूरक रूप से कार्य करते हैं। इन घटकों की पारस्परिक अंत: क्रिया से पोषक तत्वों का सतत चक्रण बना रहता है। खरपतवार एवं कीट नियंत्रण में सहायता मिलती है। मृदा की उर्वरता तथा धान की उत्पादकता में वृद्धि होती है और पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रणाली से धान, मछली, बत्तख एवं अजोला के रूप में स्थायी एवं बहुआयामी उत्पादन प्राप्त होता है। कुल मिलाकर यह प्रणाली मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने, धान की पैदावार सुधारने तथा पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

धान की वृद्धि में सहायक अजोला

पशु स्वास्थ्य एवं वृद्धि हेतु उपयोगी चारा

अजोला प्रोटीन की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध चारा है, जिसमें लगभग 15-26 प्रतिशत तक प्रोटीन पाया जाता है। इसकी प्रोटीन मात्रा मक्का से अधिक तथा सोयाबीन से कम होती है। अजोला में आवश्यक अमीनो अम्ल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहते हैं, जो पशुओं की वृद्धि एवं शारीरिक विकास में सहायक होते हैं। इसमें रेशा एवं लिग्निन की उपयुक्त मात्रा पाई जाती है, जिससे पाचन क्रिया सुदृढ़ होती है, आंतों का स्वास्थ्य बेहतर होता है तथा चारे की उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप मृत्यु दर में कमी आती है। इसके अतिरिक्त, अजोला में ऊर्जा प्रदान करने वाले घटक, जैसे कच्चा रेशा, नाइट्रोजन रहित तत्त्व तथा स्टार्च भी उपस्थित होते हैं, जो शारीरिक वृद्धि के अलावा प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करते हैं। इन्हीं गुणों के कारण अजोला को पशुपालन में एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक चारे के रूप में मान्यता प्राप्त है। कुक्कुट पालन में पारंपरिक आहार के साथ 15 प्रतिशत तक ताजा अजोला मिलाने पर पाचन क्षमता एवं शारीरिक भार में वृद्धि देखी गई है। इसी प्रकार, आहार के 5-10 प्रतिशत भाग को अजोला चूर्ण से प्रतिस्थापित करने पर वृद्धि दर एवं मांस की गुणवत्ता में स्पष्ट सुधार पाया गया है। मत्स्य पालन में भी अजोला के सूक्ष्म कणों का 10-15 प्रतिशत तक समावेश सुरक्षित एवं लाभकारी सिद्ध हुआ है, जिससे इसकी बहुपयोगिता प्रमाणित होती है।

जल भर दिया जाता है। इसके बाद प्रति वर्ग मीटर 1-1.5 कि.ग्रा. सड़ा हुआ गोबर, 2-5 ग्राम एकल सुपर फॉस्फेट तथा 2-5 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन को पानी में घोलकर गड्ढे में मिला दिया जाता है। इसके बाद प्रति वर्ग मीटर 200-250 ग्राम ताजा अजोला बीज पदार्थ डाला जाता है।

सामान्यत: परिस्थितियों में अजोला की प्रारंभिक वृद्धि अवधि 5-7 दिनों की होती है, जिसके बाद इसका तीव्र विस्तार प्रारंभ हो जाता है। सामान्यत: 20-25 दिनों के भीतर अजोला की पहली कटाई की जा सकती है। इस अवधि में प्रति वर्ग मीटर क्षेत्रफल से लगभग 4-4.5 कि.ग्रा. अजोला का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। कटाई छिद्रयुक्त टोकरी की सहायता से की जाती है, जिससे अतिरिक्त पानी निकल जाता है।

कुक्कुट आहार में उपयोगी अजोला

अजोला उत्पादन के दौरान कुछ प्रमुख बिंदुओं पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। प्रत्येक पांच दिनों में एक बार एकल सुपर फॉस्फेट का हल्का छिड़काव करना चाहिए। लगभग 10 दिन के अंतराल पर गड्ढे का एक-तिहाई पानी निकालकर उसकी जगह स्वच्छ पानी भरना चाहिए। यदि अजोला की संरचना स्थायी हो, तो प्रत्येक छह माह में पूरा पानी बदलना आवश्यक होता है। कीट एवं रोगों से बचाव हेतु सप्ताह में एक बार हल्का कीटनाशी छिड़काव करना चाहिए तथा अजोला क्यारी में पानी की गहराई न्यूनतम 10 सें.मी. बनाए रखना चाहिए।

हरित खाद

हरित खाद के रूप में अजोला का उपयोग धान की फसल के साथ किया जाता है। इसके लिए धान की पौध प्रत्यारोपण के 2-3 सप्ताह बाद खेत में ताजा अजोला बीज पदार्थ डाला जाता है। अजोला जल की सतह पर फैलकर एक मोटी परत का निर्माण करती है, जिसे उपयुक्त अवस्था में मृदा में मिला दिया जाता है। अपघटन प्रक्रिया के दौरान अजोला से नाइट्रोजन मुक्त होकर धान की फसल को पोषण प्रदान करती है। एक हरित खाद फसल के रूप में अजोला से लगभग 20-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर तक की आपूर्ति संभव होती है। खेत में डाले गए अजोला का अपघटन सामान्यत: 20-25 दिनों के बाद किया जाता है। मृदा में मिलाने से लगभग एक सप्ताह पूर्व खेत से जल निकास कर दिया जाता है। इसके बाद कल्टीवेटर अथवा देसी हल की सहायता से अजोला को मृदा में अच्छी तरह मिला दिया जाता है। अजोला का अपघटन 8-10 दिनों में पूर्ण हो जाता है, जिससे नाइट्रोजन मृदा में स्थिर होकर फसल को उपलब्ध होने लगती है।

धान की खेती में उपयोगिता

अजोला का उपयोग धान की खेती में दोहरी फसल तथा हरित खाद के रूप में अत्यंत प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। इससे न केवल फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध होता है, बल्कि मृदा की भौतिक एवं जैविक गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

दोहरी फसल

धान की रोपाई के 7-10 दिनों बाद प्रति हैक्टर 0.5-1.0 टन ताजा अजोला खेत में डाला जाता है। तीव्र वृद्धि के कारण 20-25 दिनों के भीतर अजोला जल की सतह पर घनी परत का निर्माण कर लेता है। उपयुक्त

जैविक खेती में महत्वपूर्ण अजोला

अजोला बढ़ाए फसल में पोषण मान

अवस्था में इसे मृदा में मिला देने पर अजोला शीघ्र अपघटित होकर नाइट्रोजन मुक्त करता है। इस विधि से लगभग 30-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की उपलब्धता संभव होती है, जिससे रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता में कमी आती है।

खरपतवार नियंत्रण

धान की खेती में अजोला जल की सतह पर घनी परत का निर्माण करता है, जिससे प्रकाश का प्रवेश सीमित हो जाता है। परिणामस्वरूप खरपतवारों का अंकुरण एवं वृद्धि प्रभावी रूप से नियंत्रित हो जाती है। अजोला द्वारा निर्मित यह भौतिक आवरण धान के खेत में प्राकृतिक एवं जैविक खरपतवार नियंत्रण का एक प्रभावी साधन है, जिससे रासायनिक खरपतवारनाशकों पर निर्भरता कम होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

पोषक तत्व प्रबंधन में जैव उर्वरक के रूप में अजोला का महत्व अत्यंत उल्लेखनीय है। अजोला न केवल मृदा की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होता है, बल्कि पौधों के लिए आवश्यक स्थूल एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता भी सुनिश्चित करता है। अजोला द्वारा स्थिर की गई नाइट्रोजन का केवल एक अल्प भाग त्वरित रूप से धान की फसल को उपलब्ध होता है, जबकि शेष नाइट्रोजन उसके जैव द्रव्यमान के अपघटन के दौरान क्रमिक रूप से मुक्त होती है। इस प्रक्रिया में लगभग 70 प्रतिशत नाइट्रोजन पहली फसल के लिए उपलब्ध हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, अजोला का नियमित उपयोग मृदा में लाभकारी जीवाणुओं, कवकों, ऐक्टिनोमाइसीट्स तथा अन्य सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता में वृद्धि करता है, जिससे मृदा का जैविक संतुलन सुदृढ़ होता है। इस प्रकार अजोला नाइट्रोजन का एक पर्यावरण अनुकूल, सतत एवं विश्वसनीय स्रोत सिद्ध होता है।

कीट एवं रोगों का प्रबंधन

अजोला उत्पादन के दौरान एफिड, अजोला वीविल, घोंघा, माइट तथा फफूंदजनित गलन आदि प्रमुख समस्याएं हैं। इनके प्रकोप से पत्तियों का पीला पड़ना, छिद्र बनना, मुड़ना, सड़न तथा वृद्धि में कमी देखी जाती है। इनके प्रबंधन हेतु नीम तेल या साबुन के घोल का छिड़काव, लाभकारी कीटों का संरक्षण, हाथ से कीटों को हटाना, प्रकाश एवं आश्रय फंदों का उपयोग तथा जल का नियमित प्रबंधन आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, लंबे समय तक पानी न बदलने, अधिक गोबर या उर्वरक डालने तथा अत्यधिक अजोला वृद्धि की स्थिति में सड़न एवं दुर्गंध (हाइड्रोजन सल्फाइड एवं अमोनिया) उत्पन्न हो सकती है। इससे बचाव के लिए प्रत्येक 3-4 दिनों में पानी बदलना, अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर खाद का सीमित उपयोग करना, जल स्तर 10-15 सें.मी. बनाए रखना, जल में वायु संचार बढ़ाना तथा समय-समय पर अजोला की कटाई कर संतुलित जैव द्रव्यमान बनाए रखना आवश्यक है।

अजोला उत्पादन बहुउपयोगी एवं पर्यावरण अनुकूल जैविक तकनीक है, जो मृदा की उर्वरता एवं जैविक गतिविधियों में सुधार करती है। इसके उपयोग से फसल उत्पादकता एवं दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है। इसके साथ ही यह कार्बन संचित करने में सहायक होकर नाइट्रस ऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसों के उत्सर्जन को कम करने में योगदान देती है। इस प्रकार अजोला आधारित कृषि प्रणाली टिकाऊ खेती, पर्यावरण संरक्षण एवं कम लागत वाली उत्पादन व्यवस्था के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ■

सतत खेती हेतु संरक्षित जुताई एवं सिंचाई

ऋचा जसवाल

"वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में कृषि केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि प्राकृतिक संसाधन संरक्षण, जलवायु परिवर्तन शमन एवं खाद्य सुरक्षा का प्रमुख आधार बन गई है। बढ़ती जनसंख्या, घटते जल संसाधन, मृदा क्षरण और बढ़ती लागत के बीच कृषि प्रणालियों की स्थिरता एक बड़ी चुनौती है। ऐसे में जुताई विधियों, सिंचाई प्रबंधन एवं मृदा गतिकी के अंतर्संबंध को समझकर पर्यावरण अनुकूल कृषि पद्धतियों को अपनाना आवश्यक है। जैविक खाद के अभाव में की जाने वाली परंपरागत कृषि मृदा उर्वरता एवं गुणवत्ता को कम करती है और वायुमंडलीय सीओ$_2$ बढ़ाकर वैश्विक ताप को भी बढ़ाती है। वहीं संरक्षण जुताई, विशेषकर बिना जुताई और अवशेष/भूसा मल्चिंग के साथ, मृदा संरचना, नमी संरक्षण, जैविक कार्बन और जल-स्थिर समूहन में सुधार करती है। उपयुक्त सिंचाई के साथ इसे अपनाने से जड़-मृदा अंत:क्रिया, पोषक तत्व अवशोषण और फसल सहनशीलता बढ़ती है। प्रारंभिक वर्षों में उपज में हल्की कमी हो सकती है, लेकिन दीर्घकाल में यह मृदा स्वास्थ्य, जल उत्पादकता और फसल स्थिरता में सतत वृद्धि सुनिश्चित करती है। जल अभावग्रस्त और वर्षा आधारित क्षेत्रों में यह टिकाऊ और प्रभावी विकल्प है।"

संरक्षण जुताई, शून्य एवं न्यूनतम जुताई तथा अवशेष संरक्षण आधारित प्रणालियां आधुनिक कृषि में एक परिवर्तनकारी भूमिका निभा रही हैं। ये पद्धतियां मृदा संरचना की रक्षा करते हुए जल उपयोग दक्षता, फसल उत्पादकता तथा दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाती हैं।

अनुसंधान सहयोगी, मृदा विज्ञान विभाग, सी.एस.के. हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर

जुताई विधियों और मृदा गतिकी का अंतर्संबंध फसल वृद्धि एवं भूमि उत्पादकता को गहराई से प्रभावित करता है। विशेष रूप से, संरक्षण जुताई में फसल अवशेषों का संरक्षण मृदा जैविक पदार्थ को बढ़ाता है और मृदा अपरदन व सतही बहाव के विरूद्ध प्रभावी सुरक्षा प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त, बिना जुताई एवं भूसा मल्चिंग का सहक्रियात्मक प्रभाव मृदा संरचना सुधार, जल उपयोग दक्षता में वृद्धि तथा फसल प्रदर्शन को सुदृढ़ करता है। उपयुक्त सिंचाई प्रबंधन के साथ संरक्षण जुताई मृदा नमी संरक्षण को बढ़ाकर प्रोफाइल जल अपक्षय को नियंत्रित करती है, जिससे तना/पर्ण वृद्धि, आरएलडब्ल्यूयूसी तथा फसल उपज में सुधार

संरक्षण जुताई एवं फसल अवशेष संरक्षण

संरक्षण जुताई की एक प्रमुख विशेषता फसल अवशेषों का संरक्षण है। भूसा, ठूंठ या अन्य जैविक अवशेष मृदा सतह पर एक प्राकृतिक मल्च का कार्य करते हैं। यह मल्च न केवल मृदा अपरदन एवं सतही बहाव को कम करता है, बल्कि मृदा में जैविक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ाता है। भूसा मल्चिंग के साथ बिना जुताई का सहक्रियात्मक प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस संयोजन से मृदा तापमान गतिकी संतुलित रहती है, जिससे फसल की जड़ वृद्धि, पोषक तत्व अवशोषण तथा जल उपयोग दक्षता में सुधार होता है। ठंडे क्षेत्रों में, जहां पाले का जोखिम अधिक होता है, मल्चिंग मृदा तापमान को स्थिर रखकर फसल सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।अवशेष संरक्षण के साथ बिना जुताई से मृदा कार्बन भंडारण में वृद्धि होती है, जिससे वायुमंडल में सीओ$_2$ उत्सर्जन कम होता है और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायता मिलती है।

होता है। यह प्रभाव विशेषकर जल अभावग्रस्त क्षेत्रों में फसल उत्पादन प्रणालियों की स्थिरता एवं स्थायित्व को बढ़ाता है।

इसके अतिरिक्त, संरक्षण जुताई से मृदा नमी व जड़-मृदा अंत:क्रिया में सुधार होकर पोषक अवशोषण, तना वृद्धि एवं आरएलडब्ल्यूयूसी बढ़ती है, जिससे फसलें

संरक्षण जुताई से स्वस्थ फसल

तनाव में अधिक सहनशील बनती हैं। यद्यपि कहीं-कहीं दाना उपज में हल्की कमी हो सकती है, फिर भी शोध इसे सतत फसल उत्पादन के लिए प्रभावी मानते हैं। भूसा मल्चिंग के साथ बिना जुताई मृदा तापमान संतुलित करती है, जबकि उपयुक्त सिंचाई से जल उपयोग दक्षता एवं फसल प्रदर्शन में स्थिरता आती है।

जुताई विधि एवं मृदा गतिकी

परंपरागत जुताई मृदा संरचना, जैविक कार्बन व जल धारण क्षमता को प्रभावित कर अपरदन बढ़ा सकती है। इसके विपरीत, संरक्षण एवं बिना जुताई में सतही अवशेषों के कारण मृदा गुणों में सुधार, वाष्पीकरण में कमी, जल अंत:स्रवण व समूहन स्थिरता में वृद्धि होती है।

बिना मल्च के परंरागत जुताई

सिंचाई प्रबंधन एवं जल उपयोग दक्षता

फसल उत्पादन में सिंचाई प्रबंधन महत्वपूर्ण है, क्योंकि जल की मात्रा, समय और विधि सीधे उपज और जल उपयोग दक्षताको प्रभावित करती है। अत्यधिक सिंचाई से नाइट्रेट क्षरण बढ़ता है और दाना उपज घटती है। उपयुक्त सिंचाई के साथ संरक्षण जुताई और मल्चिंग से मृदा जल अपक्षय नियंत्रित रहता है, पत्ती जल मात्रा बढ़ती है, प्रकाश संश्लेषण और शुष्क पदार्थ संचयन बेहतर होता है और जल उपयोग दक्षता में सुधार होता है।

जुताई का जल उत्पादकता पर प्रभाव

संरक्षण जुताई एवं मल्च आधारित प्रबंधन, परंपरागत जुताई की तुलना में सतही से गहरी मृदा परतों तक नमी संरक्षण बढ़ाकर फसल की जल उपलब्धता को स्थिर रखता है। मल्चिंग के साथ बिना जुताई से जल उत्पादकता, मृदा जल धारण क्षमता, जैविक कार्बन, जल स्थिर समूहन एवं अंत:स्रवण दर में वृद्धि होती है, जबकि मृदा थोक घनत्व में सामान्यत: कोई परिवर्तन नहीं होता।

संरक्षण जुताई से मृदा जल धारण और संचरण बेहतर होकर जड़ विकास और जल उपयोग दक्षता बढ़ती है। बिना जुताई और अवशेष संरक्षण विशेषकर शुष्क/अर्धशुष्क परिस्थितियों में उपज, जल उपयोग दक्षता और मृदा गुणवत्ता को दीर्घकाल तक सुधारती है। गहरी मृदा परत में ठोस घनत्व घटता और सूक्ष्म छिद्रता बढ़ती है, जिससे उपलब्ध जल और वर्षा जल अंत:स्रवण परंपरागत जुताई की तुलना में अधिक रहता है।

विभिन्न जुताई प्रणालियां मृदा गुण, जड़ वृद्धि, जल उपयोग दक्षता और उपज को अलग ढंग से प्रभावित करती हैं। परंपरागत जुताई में ठोस घनत्व बढ़ता है, जबकि बिना जुताई और अवशेष संरक्षण आधारित प्रणालियों में न्यूनतम परिवर्तन होता है। ठूंठ मल्चिंग के साथ बिना जुताई से जल उपयोग दक्षता, मृदा नमी, जड़ विकास और उपज में सुधार होता है। ये प्रणालियां सीओ$_2$ उत्सर्जन और वाष्पीकरण कम कर जल उत्पादकता और सतत कृषि को बढ़ावा देती हैं।

जुताई का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

जुताई प्रणालियां मृदा स्वास्थ्य को दीर्घकालिक रूप से प्रभावित करती हैं। मल्चिंग के साथ संरक्षण जुताई, परंपरागत गहन जुताई की तुलना में मृदा नमी संरक्षण, जैविक पदार्थ, जल धारण क्षमता एवं समूहन में सुधार करती है तथा वाष्पीकरण कम करती है। यद्यपि प्रारंभिक चरण में उपज का प्रभाव सीमित हो सकता है, परंतु समय के साथ यह प्रणाली अधिक स्थिर, उत्पादक और मृदा स्वास्थ्य के लिए लाभकारी सिद्ध होती है।

कम एवं बिना जुताई प्रणालियों में न्यूनतम मृदा हस्तक्षेप से सतही जैविक पदार्थ सुरक्षित रहता है, जिससे मृदा जैविक क्रियाशीलता, भौतिक गुणवत्ता और जल धारण क्षमता में सुधार होता है। अवशेष संरक्षण एवं उपयुक्त मल्चिंग से वाष्पीकरण और अपरदन कम होते हैं, जल-स्थिर समूहन बढ़ता है तथा जल उपयोग दक्षता एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। यद्यपि कुछ उपज घटक परंपरागत

उन्नत सिंचाई प्रणाली अपनाएं उत्पादन बढ़ाएं

जुताई में अधिक हो सकते हैं, फिर भी समग्र मृदा स्वास्थ्य के लिए संरक्षण जुताई अधिक लाभकारी सिद्ध होती है।

अर्धशुष्क परिस्थितियों में मल्चिंग के साथ संरक्षण जुताई मृदा जल मात्रा और जल उपयोग दक्षता बढ़ाती है। विशेष रूप से बिना जुताई और भूसा मल्चिंग का संयोजन दाना उपज, मृदा स्वास्थ्य, कार्बन भंडारण तथा दीर्घकालिक स्थिरता के लिए एक प्रभावी और टिकाऊ विकल्प सिद्ध होता है।

संरक्षण कृषि: भविष्य की आवश्यकता

दीर्घकालीन एवं बहु-स्थानिक अध्ययनों से स्पष्ट है कि संरक्षण कृषि आधारित जुताई प्रणालियां मृदा गुणवत्ता, जल संरक्षण एवं फसल उत्पादकता में सतत सुधार करती हैं। शून्य व न्यूनतम जुताई तथा अवशेष संरक्षण उत्पादन लागत घटाने के साथ प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में योगदान देते हैं। जलवायु परिवर्तन, मृदा क्षरण और संसाधन सीमाओं की वर्तमान चुनौतियों में संरक्षण जुताई एवं वैज्ञानिक सिंचाई प्रबंधन एक व्यवहारिक और टिकाऊ समाधान प्रदान करते हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि संरक्षण जुताई, शून्य जुताई और अवशेष संरक्षण आधुनिक कृषि के लिए आवश्यक हैं। ये मृदा स्वास्थ्य, जल उपयोग दक्षता, फसल स्थिरता और पर्यावरण संतुलन में सुधार करती हैं। सतत कृषि केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि भविष्य की खाद्य सुरक्षा का आधार है। सतत कृषि और वैज्ञानिक सिंचाई अपनाकर वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी के लिए स्वस्थ मृदा और सुरक्षित पर्यावरण सुनिश्चित कर सकते हैं। ■

सिंचाई का जल उत्पादकता पर प्रभाव

फसलों की उत्पादकता में सिंचाई प्रबंधन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अत्यधिक सिंचाई से नाइट्रेट क्षरण बढ़ता है, जिससे नाइट्रोजन उपलब्धता घटती है और दाना उपज प्रभावित होती है। अतः शुष्क पदार्थ संचयन और उच्च उपज हेतु जल एवं नाइट्रोजन का संतुलित एवं उचित उपयोग आवश्यक है। जल पोषक तत्वों का समन्वित प्रबंधन प्रकाश संश्लेषण, शुष्क पदार्थ संचयन और दाना भराव को बढ़ाकर फसल उत्पादकता में सुधार करता है। गेहूं में सीमित सिंचाई एवं नियंत्रित नाइट्रोजन से जड़ों का बेहतर विकास होता है, जिससे जल व पोषक तत्वों का कुशल उपयोग संभव होता है। सामान्यतः अधिक सिंचाई से जल उपयोग दक्षता घटती है, जबकि मल्चिंग से इसमें सुधार होता है। सीमित सिंचाई में धान की पुआल मल्चिंग से मृदा ठोस घनत्व घटता है और जैविक कार्बन बढ़ता है, जिससे मृदा स्वास्थ्य व जल संरक्षण में सुधार होता है। गेहूं में मध्यम सिंचाई स्तर पर अधिकतम दाना उपज और जल उपयोग दक्षता प्राप्त होती है। उपयुक्त सिंचाई के साथ मल्चिंग अपनाने से मृदा भौतिक व रासायनिक गुणों, पोषक तत्व उपलब्धता, जल उत्पादकता तथा दीर्घकालिक फसल उत्पादकता में प्रभावी सुधार होता है।

निवेदन

लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

धान की प्राकृतिक खेती

आलोक कुमार सिंह[1], दिग्विजय सिंह[2], रत्नेश कुमार झा[2], हर्षिता सिंह[3] और **श्रीपति द्विवेदी[2]**

"प्राकृतिक खेती केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि एक विचारधारा है, जो किसानों को स्वावलंबी बनाती है और पारिस्थितिकी तंत्र को सशक्त करती है। वर्तमान समय में प्राकृतिक खेती की आवश्यकता इसलिए और अधिक बढ़ गई है, क्योंकि रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से न केवल फसल उत्पादन लागत बढ़ रही है, बल्कि मृदा की उर्वरता, जैविक संरचना तथा खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। आधुनिक कृषि प्रणालियों में रासायनिक पदार्थों का अत्यधिक प्रयोग मृदा के स्वास्थ्य एवं पारिस्थितिकी संतुलन के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। इसके विपरीत, प्राकृतिक खेती में देसी गाय के गोबर एवं गौमूत्र से तैयार बीजामृत, जीवामृत तथा घनजीवामृत जैसे प्राकृतिक इनपुट का उपयोग किया जाता है। ये पदार्थ न केवल उत्पादन लागत को कम करते हैं, बल्कि मृदा में कार्बनिक पदार्थ, आवश्यक पोषक तत्वों तथा लाभकारी सूक्ष्मजीवों की मात्रा बढ़ाकर मृदा की जैविक सक्रियता को सु-ढ़ करते हैं। परिणामस्वरूप फसलों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है और टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा मिलता है।"

भारत में धान प्रमुख फसल है, जो कुल कृषि भूमि के लगभग 43 प्रतिशत क्षेत्रफल में उगाई जाती है तथा कुल अनाज उत्पादन में 40 प्रतिशत से अधिक योगदान देती है। परंतु पारंपरिक आधुनिक खेती में धान उत्पादन हेतु अत्यधिक जल, रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है, जो पर्यावरण एवं जल संसाधनों पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

प्राकृतिक विधि से धान की खेती में जैविक एवं प्राकृतिक आदानों के उपयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थों की पर्याप्त मात्रा बनी रहती है, जिससे नमी संरक्षण होता है और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ती है। यह स्थिति फसलों को जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से बचाने में सहायक सिद्ध होती है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राकृतिक खेती

[1]राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली-110012; [2]डा. राजेन्द्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार-848125; [3]सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज-211007 (उत्तर प्रदेश)

सारणी 1. प्राकृतिक खेती के लिए धान की उपयुक्त किस्में

धान की किस्म	प्रमुख विशेषताएं	प्राकृतिक खेती में उपयोगिता	अनुकूल मौसम एवं उपयुक्त मृदा
स्वर्णा	जलमग्न परिस्थितियों में भी अच्छी वृद्धि एवं उपज देती है	रोपाई पद्धति में उपयुक्त, कम बाहरी इनपुट में भी संतोषजनक परिणाम देती है	अधिक नमी वाले क्षेत्र एवं मध्यम तापमान वाली जलवायु
चम्पा	सूखा सहनशील, शीघ्र पकने वाली किस्म	कम जल उपलब्धता में भी अच्छी उत्पादकता	गर्म एवं अपेक्षाकृत शुष्क क्षेत्र
जगन्नाथ	शीघ्र परिपक्वता, रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी	कम रसायनों के प्रयोग में भी स्थिर उत्पादन	हल्की ठंडी एवं मध्यम जलवायु
ग्रामिनी	कम पानी में भी अच्छी उपज क्षमता	प्राकृतिक खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त किस्म	गर्म एवं सूखा प्रभावित क्षेत्र
रत्नाकर	अधिक उपज देने वाली, रोगों के प्रति सहनशील	टिकाऊ एवं प्राकृतिक खेती के लिए उपयुक्त	विभिन्न प्रकार की मृदा एवं सामान्य जलवायु परिस्थितियां

सारणी 2. प्राकृतिक विधि से धान का बीज-शोधन एवं पोषक तत्व प्रबंधन

जैव उत्पाद	आवश्यक सामग्री	निर्माण विधि	प्रयोग विधि (धान हेतु)	प्रभाव/कार्य
बीजामृत	गौमूत्र-5 लीटर गोबर-5 कि.ग्रा. चूने का पानी-50 ग्राम मृदा-1 मुट्ठी	सभी सामग्री को मृदा के बर्तन में मिलाकर लकड़ी की छड़ी से अच्छी तरह घोलें। 3-4 घंटे बाद उपयोग योग्य।	धान के बीजों को 30 मिनट तक घोल में भिगोकर छाया में सुखाएं, तत्पश्चात बुआई करें।	बीजों को रोगाणुओं से मुक्त करता है, अंकुरण क्षमता बढ़ाता है तथा जड़ सड़न से सुरक्षा प्रदान करता है।
जीवामृत	गोबर-10 कि.ग्रा. गौमूत्र-10 लीटर गुड़-2 कि.ग्रा. बेसन/आटा-2 कि.ग्रा. मृदा-1 मुट्ठी पानी-200 लीटर	सभी सामग्री को 200 लीटर पानी में मिलाकर लकड़ी की छड़ी से दिन में दो बार (सुबह-शाम) हिलाएं। 3-5 दिनों में घोल तैयार हो जाता है।	रोपाई के 10 दिनों बाद से प्रत्येक 15 दिन के अंतराल पर 200 लीटर घोल प्रति एकड़ सिंचाई जल के साथ या पत्तियों पर छिड़काव करें।	मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाता है, पोषक तत्वों की उपलब्धता सुधारता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है।
घन जीवामृत	गोबर-100 कि.ग्रा. गौमूत्र-10 लीटर गुड़-2 कि.ग्रा. बेसन/आटा-2 कि.ग्रा. मृदा-2 कि.ग्रा.	सभी सामग्री को मिलाकर छाया में ढेर बनाएं। 3-4 दिनों तक पलटते रहें। सूखने पर छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ लें।	रोपाई के समय 100 कि.ग्रा./एकड़ मृदा में मिलाएं या 20 कि.ग्रा./एकड़ नमी वाली क्यारी अथवा टपक सिंचाई क्षेत्र में डालें।	धीरे-धीरे पोषक तत्व छोड़ता है, मृदा की उर्वरता, जैविक सक्रियता एवं संरचना को सुदृढ़ करता है।

न केवल उत्पादन बढ़ाने में सहायक है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य सुधार और जल संसाधन संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके परिणामस्वरूप कृषि प्रणाली अधिक टिकाऊ बनती है तथा किसानों की आय एवं आर्थिक स्थिति में भी सकारात्मक सुधार होता है।

भूमि की तैयारी

धान की प्राकृतिक खेती में मृदा की उचित तैयारी अत्यंत आवश्यक होती है। धान की रोपाई से लगभग दो माह पूर्व हरी खाद वाली फसलों की बुआई करनी चाहिए। रोपाई से लगभग 15 दिनों पहले इन फसलों को हल या कल्टीवेटर द्वारा जुताई कर मृदा में पलट देना चाहिए, जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है। इसके साथ ही मृदा में न्यूनतम जुताई अपनानी चाहिए, ताकि मृदा संरचना सुरक्षित रहे और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बनी रहे।

अत्यधिक जुताई से मृदा की भौतिक संरचना प्रभावित होती है, जिससे वायु संचार एवं नमी धारण करने की क्षमता कम हो जाती है। उचित भूमि तैयारी से मृदा में वायु और नमी संतुलन बना रहता है, जो पौधों की स्वस्थ वृद्धि एवं बेहतर विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है।

प्राकृतिक विधि से उत्पादित भरपूर उपज

कीट प्रबंधन

धान की फसल में कीट प्रबंधन प्राकृतिक रूप से तैयार किए गए जैव-कीटनाशकों

सारणी 3. प्राकृतिक कीटनाशक उपयोग की विधियां

प्राकृतिक कीटनाशक	आवश्यक सामग्री	निर्माण विधि	उद्देश्य (लक्षित कीट)	धान की फसल में प्रयोग
नीमास्त्र	नीम पत्ती-5 कि.ग्रा. गौमूत्र-10 लीटर पानी-10 लीटर	नीम की पत्तियों को कूटकर गौमूत्र एवं पानी में मिलाएं। मिश्रण को 4-5 दिन छाया में रखकर प्रतिदिन हिलाएं। तत्पश्चात छानकर उपयोग करें।	रस चूसने वाले कीट, माहूं, सफेद मक्खी, तना छेदक	5 लीटर तैयार घोल को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें।
अग्निअस्त्र	हरी मिर्च-500 ग्राम लहसुन-250 ग्राम गौमूत्र-5 लीटर	मिर्च एवं लहसुन को बारीक पीसकर गौमूत्र में मिलाएं। ढककर 4-5 दिन छाया में रखें तथा प्रतिदिन हिलाएं। बाद में छानकर उपयोग करें।	रस चूसने वाले कीट, चेपा, माहूं	1 लीटर घोल को 10 लीटर पानी में मिलाकर सुबह या शाम छिड़काव करें।
ब्रह्मास्त्र	धतूरा, अकौआ, तुलसी, अरंडी आदि 5-6 पौधों की पत्तियां (कुल 3 कि.ग्रा.) गौमूत्र-10 लीटर	सभी पत्तियों को कूटकर गौमूत्र में मिलाएं। मिश्रण को 5-7 दिनों तक छाया में ढककर रखें और प्रतिदिन हिलाएं। तत्पश्चात छानकर प्रयोग करें।	पतंगे, तना छेदक एवं विभिन्न प्रकार के कीट	1 लीटर घोल को 10 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करें।
दशपर्णी अर्क	नीम, तुलसी, अरंडी, पपीता, सहजन, आक, बेल, गुड़हल आदि 10 पत्तेदार पौधे (प्रत्येक 1 कि.ग्रा.) गौमूत्र-5 लीटर पानी-20 लीटर गुड़-500 ग्राम	सभी पत्तियों को कूटकर पानी एवं गौमूत्र में मिलाएं। ऊपर से गुड़ डालकर 15 दिनों तक छाया में ढककर रखें तथा प्रतिदिन हिलाएं। 15 दिन बाद छानकर उपयोग करें।		

के उपयोग के साथ-साथ फसलचक्र एवं मिश्रित खेती जैसी टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाकर किया जाता है। इन विधियों से कीट प्रकोप को नियंत्रित करने के साथ-साथ पर्यावरण संतुलन भी बनाए रखा जाता है। सारणी-3 में प्राकृतिक कीटनाशकों एवं उनके उपयोग की विस्तृत जानकारी दी गई है। इन जैव-कीटनाशकों के तैयार घोल में से 1 लीटर घोल को छानकर 10 लीटर पानी में मिलाया जाता है। तैयार मिश्रण का छिड़काव सुबह या शाम के समय किया जाना चाहिए। कीट प्रकोप की स्थिति में 10-15 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव दोहराया जाता है। इस विधि से धान की फसल को कीट क्षति से सुरक्षित रखते हुए रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम की जा सकती है।

सिंचाई प्रबंधन

वर्तमान समय में जल संरक्षण अत्यंत आवश्यक हो गया है। प्राकृतिक खेती पद्धति में पारंपरिक रूप से खेतों को लगातार जलमग्न रखने के स्थान पर सूखी भूमि में धान की सीधी बुआई अथवा नियंत्रित सिंचाई पद्धति को अपनाया जाता है। इसमें वर्षा जल संचयन एवं वैकल्पिक सिंचाई के माध्यम से मृदा में आवश्यक नमी बनाए रखी जाती है। इस विधि से जल की बचत होती है तथा पौधों की जड़ों का समुचित विकास और मजबूती सुनिश्चित होती है।

मेड़बंदी द्वारा वर्षा जल का संरक्षण किया जाता है। साथ ही खेत में घनजीवामृत का प्रयोग एवं फसल अवशेषों द्वारा आच्छादन (मल्चिंग) करने से मृदा में नमी लंबे समय तक बनी रहती है। परिणामस्वरूप कम पानी में भी फसल स्वस्थ रहती है और भूजल दोहन में कमी आने से पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है।

कटाई एवं भंडारण

जब धान की बालियां लगभग 90 प्रतिशत तक पककर सुनहरी रंग की हो जाएं और फसल अच्छी तरह सूख जाए, तब कटाई की जानी चाहिए। प्राकृतिक खेती में कटाई प्रायः हाथ से की जाती है, जिससे मृदा संरचना एवं लाभकारी सूक्ष्मजीवों को न्यूनतम क्षति होती है।

भंडारण से पूर्व धान को ठंडे, सूखे एवं हवादार स्थान पर फैलाकर उसमें उपस्थित नमी को अच्छी तरह सुखाना आवश्यक होता है। इसके पश्चात नीम तेल अथवा लहसुन के घोल का प्रयोग कर भंडारण के दौरान लगने वाले कीटों एवं रोगों से सुरक्षा की जाती है। इन उपायों से फसल की गुणवत्ता बनी रहती है और भंडारण हानि में कमी आती है। ■

प्राकृतिक खेती में देसी गाय का महत्व

प्राकृतिक खेती प्रणाली में देसी गाय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। देसी गाय के गोबर एवं गौमूत्र का उपयोग जीवामृत और घनजीवामृत जैसे जैविक आदान तैयार करने में किया जाता है, जो मृदा की उर्वरता बढ़ाने तथा लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को प्रोत्साहित करने में सहायक होते हैं। गोबर और गौमूत्र प्राकृतिक पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, जो फसलों की वृद्धि, स्वास्थ्य एवं उत्पादन गुणवत्ता में सुधार लाते हैं।इसके अतिरिक्त, देसी गाय से प्राप्त दूध पोषक, शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है। किसान इससे दही, घी एवं अन्य दुग्ध उत्पाद तैयार कर बाजार में विक्रय कर सकता है, जिससे उसे अतिरिक्त आय प्राप्त होती है और आर्थिक स्वावलंबन को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार देसी गाय न केवल प्राकृतिक खेती की आधारशिला है, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने एवं टिकाऊ कृषि व्यवस्था को सु-दृढ़ करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

देसी गाय की बड़ी भूमिका

त्वरित कंपोस्टिंग तकनीक से फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण

अनुप्रिया यादव और **वेल्लाइचामी मागेश्वरन**

"कृषि भारत की रीढ़ है और किसानों की आजीविका का मुख्य साधन भी है। समय के साथ आधुनिक खेती में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग बढ़ा है, जिससे मृदा की उर्वरता में गिरावट आई है तथा उत्पादन लागत में भी वृद्धि हुई है। इस समस्या का प्रभावी समाधान जैविक खेती में निहित है, जिसका सबसे महत्वपूर्ण घटक कम्पोस्ट खाद है। कम्पोस्ट एक प्राकृतिक जैविक खाद है, जिसे सूक्ष्मजीवों की सहायता से जैविक अपशिष्टों का अपघटन कर तैयार किया जाता है। भाकृअनुप-एनबीएआईएम द्वारा विकसित त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक के अंतर्गत 'कुश बायो फास्ट' (तरल जैव संवर्धक) का उपयोग कर फसल अवशेषों जैसे धान की पराली, भूसा, सरसों के डंठल, वृक्षों की पत्तियां आदि से मात्र 60 दिनों में गुणवत्तायुक्त कम्पोस्ट खाद तैयार की जा सकती है। कम्पोस्ट खाद न केवल मृदा की उर्वराशक्ति एवं जैविक कार्बन को बढ़ाती है, बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से भी एक सुरक्षित और सतत उपाय है।"

उत्तर भारत में मुख्य रूप से धान एवं गेहूं की खेती की जाती है। इन फसलों की कटाई के बाद बड़ी मात्रा में फसल अवशेष, जैसे-धान की पराली एवं गेहूं के डंठल उत्पन्न होते हैं। इनमें से अधिकांश अवशेष पशु चारे तथा अन्य घरेलू उपयोगों में प्रयुक्त होते हैं, जबकि शेष अतिरिक्त अवशेषों को प्रायः खुले खेतों में जला दिया जाता है। इससे पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता है तथा मृदा में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में

सूक्ष्मजीव प्रौद्योगिकी प्रयोगशाला, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि रूप से महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीव संस्थान, कुशमौर, मऊ-275103 (उत्तर प्रदेश)

कम्पोस्ट खाद से रोगों में कमी

कम्पोस्ट मृदा की सेहत एवं फसल उत्पादकता को बढ़ाता है। इसे खेत की तैयारी के समय या बुआई के 10-15 दिनों बाद प्रयोग किया जा सकता है। कम्पोस्ट मृदा के पी-एच. एवं ई.सी. को संतुलित बनाए रखने में सहायक होता है। इसके उपयोग से मृदा में रासायनिक प्रदूषण कम होता है तथा जैविक खेती को प्रोत्साहन मिलता है। कम्पोस्ट से मृदा में लाभकारी जीवाणुओं, फफूंदों एवं केंचुओं की संख्या में वृद्धि होती है, जिससे उर्वराशक्ति में सुधार होता है। इससे किसानों को महंगी रासायनिक खादों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, खेती की लागत घटती है तथा लाभ में वृद्धि होती है। कम्पोस्टिंग एक पर्यावरण अनुकूल प्रक्रिया है, जो मृदा, जल एवं वायु के संतुलन को बनाए रखने में सहायक है। इसके साथ ही यह पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है तथा जड़ सड़न, पत्ती धब्बा जैसे रोगों की आशंका को कम करती है।

सिफारिशें

- **नमी बनाए रखें:** कम्पोस्ट सामग्री में समय-समय पर पानी का छिड़काव करते रहें, ताकि नमी स्तर 50-60 प्रतिशत तक बना रहे। उचित नमी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता के लिए आवश्यक होती है।
- **पलटना:** प्रत्येक 10-15 दिनों के अंतराल पर कम्पोस्ट को पलटते रहें, जिससे वायुसंचार (ऑक्सीजन) बना रहे और अपघटन प्रक्रिया तीव्र एवं प्रभावी रूप से हो सके।
- **समयावधि:** त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक के अंतर्गत कम्पोस्ट सामान्यत: 45-60 दिनों में तैयार हो जाती है।

त्वरित कम्पोस्टिंग को अपनाना प्रभावी विकल्प

कमी आ जाती है, जिससे मृदा की गुणवत्ता और उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

धान-गेहूं फसल प्रणाली में धान की कटाई और गेहूं की बुआई के बीच समयावधि अत्यंत कम होती है। समय की कमी के कारण अधिकांश किसान खेतों को शीघ्र साफ करने के लिए धान की पराली को जला देते हैं। इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष लगभग 20-22 मिलियन टन अतिरिक्त धान अवशेष उपलब्ध होते हैं, जिनका उचित प्रबंधन न होने से पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

इन समस्याओं के समाधान के रूप में त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक को अपनाना एक प्रभावी विकल्प है। धान एवं गेहूं के डंठलों की त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक इस प्रकार विकसित की गई है कि मात्र 60 दिनों के भीतर गुणवत्तायुक्त जैविक खाद तैयार की जा सके। कम्पोस्ट के उपयोग से धान एवं गेहूं की उपज तथा गुणवत्ता में काफी सुधार देखा गया है और यह जैविक खेती को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निर्मित कम्पोस्ट

फसल उत्पादन प्रणाली में कम्पोस्ट के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता लगभग 25-30 प्रतिशत तक कम की जा सकती है तथा मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार होता है।

जागरूकता एवं प्रदर्शन कार्यक्रमों के माध्यम से इस तकनीक को अपनाने पर किसानों की खेती में सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यह तकनीक किसान स्वयं अपने स्तर पर कम लागत में आसानी से अपना सकते हैं।

कम्पोस्ट तैयार करने की विधि

कृषि से प्राप्त फसल अवशेषों, विशेष रूप से धान की पराली को एकत्र कर 4-5 सें.मी. के छोटे टुकड़ों में काटा जाता है, जिससे अपघटन प्रक्रिया तीव्र हो सके। इसके अतिरिक्त अन्य फसल अवशेष जैसे-सरसों के डंठल, दलहनी फसलों (चना, मटर आदि) के अवशेष, गेहूं का भूसा तथा वृक्षों की सूखी पत्तियां भी कम्पोस्ट निर्माण में प्रयुक्त की जाती हैं।

भाकृअनुप-एनबीएआईएम द्वारा विकसित सूक्ष्मजीव समूह 'कुश बायो फास्ट' के उपयोग से कृषि अवशेषों से बायोफोर्टिफाइड कम्पोस्ट तैयार की जाती है। यह तकनीक उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद उत्पादन में सहायक है, जिससे मृदा की गुणवत्ता में सुधार, कीट एवं रोग नियंत्रण में सहायता, रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता में कमी तथा मानव स्वास्थ्य संरक्षण में योगदान मिलता है। कम्पोस्ट के उपयोग से मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है, रसायनों का प्रयोग कम होता है, उत्पादन लागत घटती है तथा फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम

भाकृअनुप-एनबीएआईएम द्वारा किसानों के लिए नियमित रूप से विभिन्न प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य किसानों को सूक्ष्मजीव आधारित कृषि तकनीकों के प्रति जागरूक करना तथा आधुनिक, टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल खेती पद्धतियों को बढ़ावा देना है। वर्ष 2023 से 2025 के दौरान संस्थान की वैज्ञानिक टीमों द्वारा किसानों के गांवों में जाकर भी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए, जिनमें बगली पिजरा एवं करहां जैसे गांव शामिल रहे। इन कार्यक्रमों में लगभग 200 से अधिक किसानों ने भाग लिया। प्रशिक्षण के अंतर्गत किसानों को त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक, मृदा परीक्षण किट द्वारा मृदा की जांच विधि, मृदा की गुणवत्ता सुधार तकनीक, जैविक खाद एवं कम्पोस्ट का उपयोग, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करने के उपाय, कृषि में सूक्ष्मजीवों का उपयोग, कम्पोस्ट एवं वर्मीकम्पोस्ट निर्माण, फसल अवशेष प्रबंधन तथा मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन से संबंधित व्यावहारिक जानकारी प्रदान की गई।

कम्पोस्ट की गुणवत्ता

त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक से तैयार की गई कम्पोस्ट उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद है, जिसमें आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इस कम्पोस्ट का विद्युत चालकता (ई. सी.) मान 3.38, पी-एच 8.5, कुल नाइट्रोजन 1.65 प्रतिशत, कुल कार्बनिक कार्बन 24.75 प्रतिशत, कुल फॉस्फोरस 0.44 प्रतिशत तथा कुल पोटेशियम 1.63 प्रतिशत पाया गया। इसके साथ ही इसका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात 15.17 रहा, जो मृदा सुधार एवं पौधों की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त माना जाता है। यह कम्पोस्ट मृदा की उर्वरता बढ़ाने के साथ-साथ पौधों के लिए पोषक तत्वों का उत्कृष्ट स्रोत है।

तरल रूप में कुश बायो-फास्ट

कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम

कम्पोस्ट निर्माण की प्रक्रिया के अंतर्गत सर्वप्रथम लगभग 2 क्विंटल कटा हुआ फसल अवशेष (पुआल) लिया जाता है और उसमें पर्याप्त मात्रा में पानी का छिड़काव कर 50-60 प्रतिशत नमी बनाए रखी जाती है। इसके पश्चात 10 प्रतिशत गोबर घोल, 0.1 प्रतिशत 'कुश बायो फास्ट' मिश्रण (भाकृअनुप-एनबीएआईएम द्वारा विकसित) 0.1 प्रतिशत गुड़ का घोल तथा 1 प्रतिशत यूरिया मिलाकर सामग्री को अच्छी तरह मिश्रित किया जाता है।

तैयार मिश्रण को कम्पोस्ट बैग (आकार लगभग 12×4×3 फीट) में भरकर मोटी प्लास्टिक शीट या तिरपाल से ढक दिया जाता है। अगले दिन से ही बायोकन्वर्जन बैग में तापमान बढ़ने लगता है, जो बड़े बायोकन्वर्जन यूनिट में 70-75 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच सकता है। इसके बाद तापमान धीरे-धीरे कम होने लगता है। प्रत्येक 10-15 दिनों के अंतराल पर सामग्री को पलटना आवश्यक होता है, जिससे वायुसंचार बना रहता है और कम्पोस्ट शीघ्र एवं उच्च गुणवत्ता के साथ तैयार होती है।

कम्पोस्ट के लाभ

कम्पोस्ट, मृदा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम जैसे आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति करता है। इसके प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जिससे मृदा की संरचना में सुधार होता है तथा वह अधिक भुरभुरी एवं हवादार बनती है। कम्पोस्ट, मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि कर मृदा कटाव को कम करता है और सिंचाई की आवश्यकता को घटाता है, जिससे पौधे सूखे की स्थिति में भी बेहतर विकास कर पाते हैं।

कम्पोस्ट के नियमित उपयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे मृदा में रासायनिक प्रदूषण घटता है और जैविक खेती को बढ़ावा मिलता है। यह मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों, फफूंदों एवं केंचुओं की संख्या को बढ़ाता है, जो मृदा उर्वरता एवं पोषक तत्व चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आर्थिक दृष्टि से भी कम्पोस्ट किसानों के लिए लाभकारी है। इससे महंगी रासायनिक खादों पर होने वाला व्यय कम होता है, उत्पादन लागत घटती है तथा लाभ में वृद्धि होती है। कम्पोस्टिंग एक पर्यावरण अनुकूल प्रक्रिया है, जो मृदा, जल एवं वायु के संतुलन को बनाए रखने में सहायक है।

इसके अतिरिक्त, कम्पोस्ट पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है तथा जड़ सड़न, पत्ती धब्बा जैसे रोगों की आशंका को कम करता है। कम्पोस्ट मृदा की जलधारण क्षमता एवं तापीय स्थिरता को बढ़ाकर पौधों को अजैविक तनाव जैसे सूखा, अधिक तापमान, लवणता, भारी धातुओं का प्रभाव एवं पी.एच. असंतुलन से बचाने में सहायक होता है। इस प्रकार कम्पोस्ट जैविक एवं अजैविक दोनों प्रकार के तनावों को कम कर फसल उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार करता है।

त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक जैविक अपशिष्टों को पोषक तत्वों से भरपूर खाद में परिवर्तित करने की एक तेज, प्रभावी एवं पर्यावरण-अनुकूल विधि है। यह तकनीक किसानों, बागवानी उत्पादकों तथा ग्रामीण समुदायों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। सतत कृषि को बढ़ावा देने के साथ-साथ यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाती है, उत्पादन लागत को कम करती है तथा किसानों की आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करती है। ■

धान की फसल में कम्पोस्ट टी का प्रयोग

सौरव चौरसिया, श्रद्धा यादव और **ए.के. सिंह**

“धान (ओराइजा सैटिवा एल.) विश्व की सर्वाधिक उपजाऊ और उपभोग की जाने वाली अनाज फसल है। वैश्विक खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में उत्पादन बढ़ाने हेतु रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग किया जा रहा है, जिसके कारण मृदा स्वास्थ्य, जल गुणवत्ता और जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में कम्पोस्ट टी एक सतत और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प के रूप में उभरकर सामने आया है। कम्पोस्ट टी, उच्च गुणवत्ता वाले कम्पोस्ट से तैयार तरल घोल है, जिसमें पोषक तत्वों के साथ-साथ लाभकारी सूक्ष्मजीव और जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं। अनेक शोध अध्ययनों से यह प्रमाणित हुआ है कि कम्पोस्ट टी के प्रयोग से धान की वृद्धि दर, उपज, गुणवत्ता तथा मृदा स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार होता है। यह लेख कम्पोस्ट टी की तैयारी की विधियों, इसके पोषक एवं सूक्ष्मजीवी गुणों तथा धान उत्पादन पर इसके प्रभावों का वैज्ञानिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।”

भारत सहित एशिया महाद्वीप के अधिकांश देशों में धान प्रमुख आहार है। देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में धान का योगदान लगभग 40 प्रतिशत है और यह लगभग 43 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में उगाया जाता है। बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण धान उत्पादन को बढ़ाना अत्यावश्यक है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अनियंत्रित प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता में लगातार कमी हो रही है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों की कमी ने धान की उत्पादकता को चुनौती दी है।

ऐसे समय में जैविक विकल्प अपनाना आवश्यक है। कम्पोस्ट टी, सतत कृषि का एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो न केवल पौधों को पोषण देता है, बल्कि मृदा की जैविक क्रियाशीलता को भी बढ़ाता है। इसमें मौजूद सूक्ष्मजीव पौधों की जड़ों के चारों ओर लाभकारी वातावरण तैयार करते हैं, जिससे पोषक तत्वों का अपघटन एवं उपलब्धता बेहतर होती है। यह रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करके पर्यावरण अनुकूल और

सस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या-224229 (उत्तर प्रदेश)

उपयोगी

कम्पोस्ट टी, धान उत्पादन में एक पर्यावरण-अनुकूल, लागत-प्रभावी और सतत तकनीक है। यह पौधों की वृद्धि और उपज में वृद्धि के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य और सूक्ष्मजीव विविधता को सुधारता है। रोगजनक दमन और पौधों की प्रतिरक्षा क्षमता को बढ़ाने में इसकी विशेष भूमिका है। इसलिए इसे एकीकृत फसल प्रबंधन प्रणाली का हिस्सा बनाकर व्यापक स्तर पर अपनाया जा सकता है। भविष्य में विभिन्न क्षेत्रों और परिस्थितियों में इसके बड़े पैमाने पर परीक्षण और किसानों तक तकनीक का प्रसार आवश्यक है।

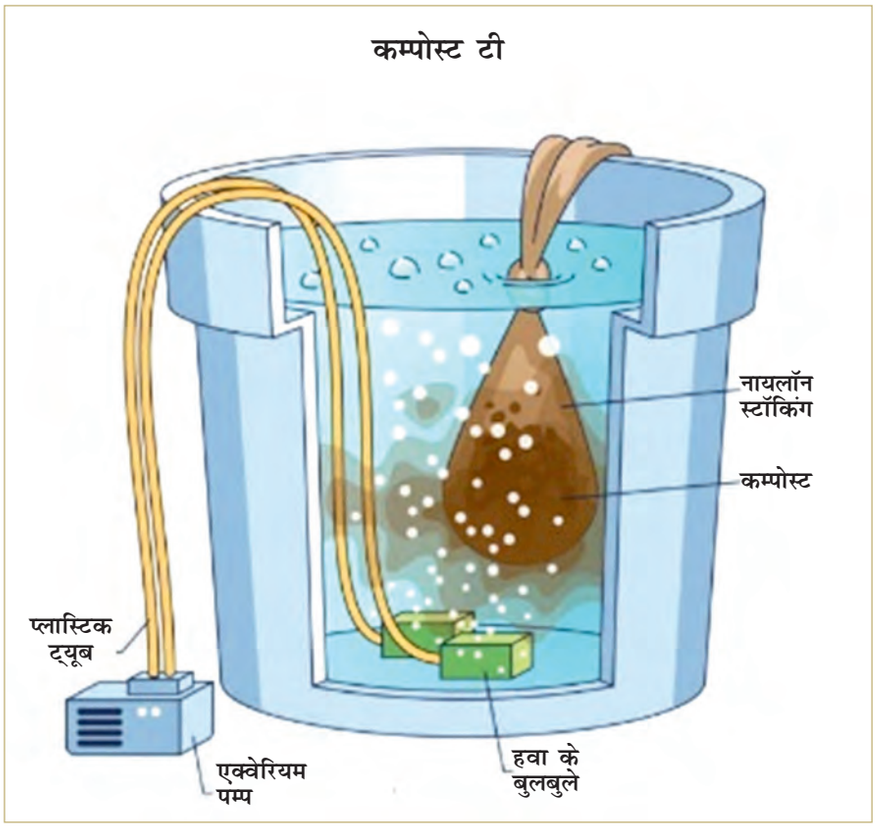

कम्पोस्ट टी निर्माण प्रक्रिया

लागत प्रभावी तकनीक साबित हो रही है।

कम्पोस्ट टी की तैयारी

कम्पोस्ट टी की तैयारी मुख्यत: दो विधियों से की जाती है:

एरोबिक कम्पोस्ट टी

- उच्च गुणवत्ता वाले कम्पोस्ट (2-3 कि.ग्रा.) को 20-25 लीटर स्वच्छ जल में 24-48 घंटे तक वायवीकरण के साथ रखा जाता है।

तरल उर्वरक के रूप में चाय खाद

- इसमें गुड़, समुद्री शैवाल अर्क, मछली का घोल जैसे पोषण स्रोत मिलाए जाते हैं ताकि सूक्ष्मजीवों की वृद्धि अधिक हो।
- इसमें बैसिलस एस्पी., स्यूडोमोनास एस्पी., एजोटोबैक्टर, ट्राइकोडर्मा जैसे जीवाणु व कवक अधिक सक्रिय रहते हैं।

एनेरोबिक कम्पोस्ट टी

इसमें कम्पोस्ट को पानी में 7-10 दिनों तक बिना वायवीकरण के डुबोकर रखा जाता है। यह विधि अपेक्षाकृत सरल है, परंतु इसमें कुछ रोगजनक सूक्ष्मजीवों के पनपने की आशंका रहती है।

कम्पोस्ट टी की पोषक संरचना

- नाइट्रोजन (0.03-0.12 प्रतिशत)
- फॉस्फोरस (0.02-0.09 प्रतिशत)
- पोटेशियम (0.05-0.15 प्रतिशत)
- सूक्ष्म पोषक तत्व: जिंक, आयरन, मैंग्नीज, कॉपर
- जैव सक्रिय यौगिक: आई.ए.ए., जिब्रैलिक अम्ल, साइटोकिनिन
- लाभकारी सूक्ष्मजीव: एजोटोबैक्टर, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस, ट्राइकोडर्मा हर्जिनियम, राइजोबियम, फॉस्फोबैक्टीरिया

धान उत्पादन में कम्पोस्ट टी का प्रभाव

वृद्धि लक्षण

कम्पोस्ट टी के छिड़काव से धान की वृद्धि में उल्लेखनीय सुधार पाया गया।

- एक रिपोर्ट के अनुसार कम्पोस्ट टी के प्रयोग से पौधों की ऊंचाई में 14 प्रतिशत, टिलर संख्या में 17 प्रतिशत और क्लोरोफिल सामग्री 12 प्रतिशत वृद्धि हुई।
- धान का जैवभार उत्पादन कम्पोस्ट टी उपचार से 15 प्रतिशत अधिक थी।

सारणी 1. कम्पोस्ट टी का धान की वृद्धि पर प्रभाव

उपचार	पौध की ऊंचाई (सें.मी.)	प्रति पौधा टिलर	एस.पी.ए.डी. मान	जड़ की लंबाई (सें.मी)
नियंत्रण (एन.पी.के.)	92.4	8.2	36.1	14.5
कम्पोस्ट टी (1 स्प्रे)	101.6	9.4	40.5	17.2
कम्पोस्ट टी (2 स्प्रे)	106.8	10.1	42.3	18.4
50 प्रतिशत एन.पी.के.+कम्पोस्ट	104.3	9.8	41.7	18.1

सारणी 2. धान की उपज एवं आर्थिक लाभ पर कम्पोस्ट टी का प्रभाव

उपचार	अनाज उपज (टन/हैक्टर)	भूसा उपज (टन/हैक्टर)	शुद्ध लाभ (रु./है.)	बी : सी अनुपात
नियंत्रण (एन.पी.के.)	5	6.8	59500	2.15
कम्पोस्ट टी (2 स्प्रे)	5.6	7.3	64800	2.28
50 प्रतिशत एन.पी.के.+कम्पोस्ट	5.9	7.6	68200	2.42
100 प्रतिशत ऑर्गेनिक (एफ.वाई.एम.+सी.टी.)	5.4	7.1	61700	2.22

- हालिया अध्ययन में पाया गया कि कम्पोस्ट टी के प्रयोग से पौधों की जड़ लंबाई और शुष्क वजन क्रमश: 22 प्रतिशत और 18 प्रतिशत अधिक हुआ।

उपज संबंधी लक्षण

- कम्पोस्ट टी का धान पर प्रयोग करते हुए पाया गया कि 50 प्रतिशत एन.पी.के. कम्पोस्ट टी छिड़काव से अनाज उपज 5.6 टन प्रति हैक्टर रही, जबकि केवल एन.पी.के. उपचार में 5.0 टन प्रति हैक्टर उपज प्राप्त हुई।
- कम्पोस्ट टी के दो छिड़काव (30 और 60 दिनों) से प्रति वर्ग मीटर 14 प्रतिशत अधिक बालियां और प्रति बाली 11 प्रतिशत अधिक दाने बने।
- कम्पोस्ट टी+एफ.वाई.एम. के प्रयोग से धान की उपज 6.2 टन प्रति हैक्टर रही, जो नियंत्रण (5.5 टन प्रति हैक्टर) से 12.7 प्रतिशत अधिक थी।

मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

कम्पोस्ट टी के प्रयोग से मृदा में उपलब्ध नाइट्रोजन और फॉस्फोरस क्रमश: 18 प्रतिशत और 22 प्रतिशत अधिक पाए गए।

- जैविक कार्बन की मात्रा में 0.2-0.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
- सूक्ष्मजीव संख्या में 25-30 प्रतिशत तक वृद्धि हुई।
- कम्पोस्ट टी के प्रयोग से मृदा की एंजाइम सक्रियता (डिहाइड्रोजनेज और फॉस्फेट) में 20-25 प्रतिशत वृद्धि हुई।

रोग प्रबंधन

- एनेरोबिक कम्पोस्ट टी में उपस्थित ट्राइकोडर्मा स्पी. और स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस जैसे सूक्ष्मजीव धान में झुलसा रोग और शीथ ब्लाइट की तीव्रता को 20-30 प्रतिशत तक कम करते हैं।

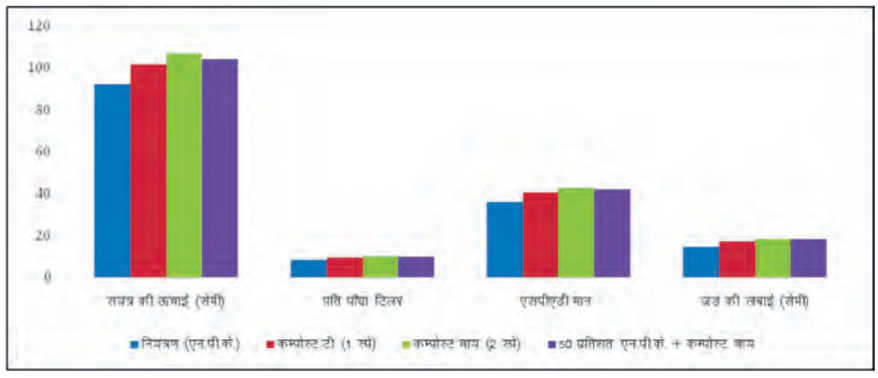

धान की वृद्धि पर कम्पोस्ट टी का प्रभाव

कम्पोस्ट टी की कार्यविधि

- **पोषण उपलब्धता:** कम्पोस्ट टी घुलनशील नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम एवं सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान करता है, जिससे पौधों को त्वरित पोषण मिलता है।
- **सूक्ष्मजीवी सक्रियता:** लाभकारी सूक्ष्मजीव जैसे एजोटोबैक्टर व राइजोबियम वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। फॉस्फोबैक्टीरिया द्वारा फॉस्फोरस का घुलन होता है।
- **जैव उत्तेजक प्रभाव:** कम्पोस्ट टी में उपस्थित हार्मोन जैसे आई.ए.ए. और जिब्रैलिक अम्ल पौधों की जड़ों और तनों की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं।
- **रोग नियंत्रण:** ट्राइकोडर्मा एसपी. रोगजनक कवकों पर परजीविता करता है। स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस एंटीबायोटिक पदार्थ स्रावित कर रोगजनकों को रोकता है। पौधों में प्रणालीगत अर्जित प्रतिरोध सक्रिय होता है।
- **तनाव सहनशीलता:** कम्पोस्ट टी पौधों में एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम (सी.ए.टी., पी.ओ.डी., एस.ओ.डी.) की सक्रियता बढ़ाता है, जिससे सूखा एवं लवणता तनाव सहनशीलता बढ़ती है।

- कम्पोस्ट टी छिड़काव से ब्लास्ट रोग की गंभीरता 27 प्रतिशत तक घटी।
- रोग नियंत्रण के अतिरिक्त पौधों की प्रतिरक्षा क्षमता भी बढ़ी, जिससे पौधों में तनाव सहनशीलता बढ़ी।

आर्थिक पक्ष

कम्पोस्ट टी की तैयारी लागत रासायनिक उर्वरकों की तुलना में काफी कम है। कम्पोस्ट टी 50 प्रतिशत एन.पी.के. उपचार से शुद्ध लाभ 68,200 रुपये प्रति हैक्टर रहा, जबकि केवल रासायनिक उर्वरक उपचार से 59,500 रुपये प्रति हैक्टर लाभ मिला। बी:सी अनुपात क्रमश: 2.42 और 2.15 रहा। ■

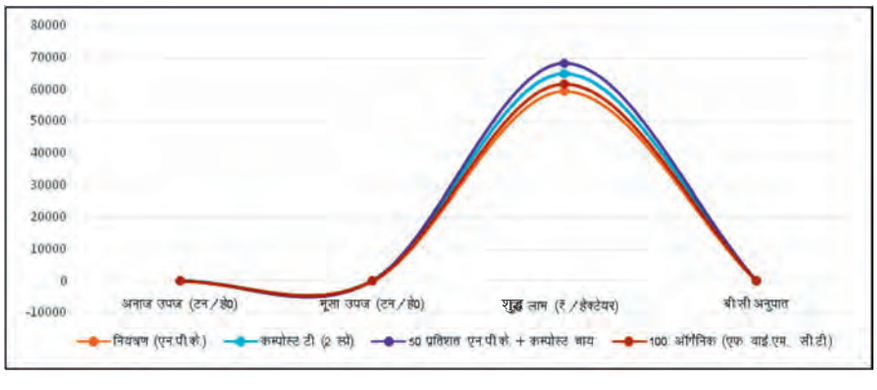

धान की उपज पर कम्पोस्ट टी का प्रभाव

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ अपना ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

संपादक

सशक्तिकरण की दिशा में विकसित कृषि संकल्प अभियान

शुभ्रांशु सिंह, पुष्पेन्द्र यादव, रोहन सेरावत और **सुनील कुमार तिवारी**

"विकसित कृषि संकल्प अभियान (खरीफ) सरकार एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भाकृअनुप) द्वारा प्रारंभ की गई एक महत्वपूर्ण पहल है, जिसका उद्देश्य किसानों को आधुनिक तकनीकों, वैज्ञानिक पद्धतियों तथा नवीन कृषि योजनाओं से जोड़ना है। 29 मई से 12 जून 2025 तक आयोजित इस अभियान में देशभर के कृषि विज्ञान केंद्रों ने सक्रिय सहभागिता निभाई। इसके अंतर्गत किसानों को मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जल संरक्षण, जैविक खेती, कृषि यंत्रीकरण एवं फसल विविधीकरण से संबंधित जानकारी प्रदान की गई। महिला किसानों तथा युवाओं की सहभागिता पर विशेष जोर दिया गया। यह अभियान किसानों में वैज्ञानिक सोच, आत्मनिर्भरता एवं टिकाऊ कृषि की अवधारणा को सुदृढ़ करता है, जो विकसित भारत-2047 के लक्ष्य की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।"

अभियान की उपलब्धियां

'विकसित कृषि संकल्प अभियान (खरीफ)' केवल एक सरकारी कार्यक्रम नहीं, बल्कि किसानों की सोच में सकारात्मक परिवर्तन लाने की दिशा में एक व्यापक जनआंदोलन के रूप में उभरा। इस अभियान के माध्यम से देशभर में किसानों द्वारा अपनाई गई नवीन तकनीकों तथा नए कृषि-आधारित उद्यमों को वैज्ञानिकों के सहयोग से अन्य किसानों तक प्रभावी रूप से पहुंचाया गया। इससे किसानों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा मृदा स्वास्थ्य और प्राकृतिक खेती के महत्व को पुनः सुदृढ़ किया गया। इसके साथ ही, कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका ग्रामीण विकास के प्रमुख केंद्रों के रूप में और अधिक सशक्त हुई। महिला किसानों की सहभागिता में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई तथा कृषि विविधीकरण को बढ़ावा देने की दिशा में ठोस एवं व्यावहारिक कदम उठाए गए।

भारतीय कृषि न केवल खाद्यान्न सुरक्षा का आधार है, बल्कि ग्रामीण आजीविका, पर्यावरणीय स्थिरता और सामाजिक संतुलन को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऐसे में कृषि क्षेत्र में समय-समय पर नवाचारों को प्रोत्साहित करना, नवीन तकनीकों का व्यापक प्रचार-प्रसार करना तथा किसानों को नवीन योजनाओं की जानकारी उपलब्ध करवाना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार द्वारा 'विकसित कृषि संकल्प अभियान' का शुभारंभ किया गया। यह अभियान किसानों को कृषि क्षेत्र में हो रहे आधुनिक परिवर्तनों से जोड़ने, उन्हें नई कृषि योजनाओं से अवगत करवाने तथा आधुनिक एवं सतत खेती की दिशा में प्रेरित करने के लिए संचालित किया गया। इस अभियान का प्रमुख लक्ष्य किसानों में आत्मनिर्भरता की भावना विकसित करना तथा वैज्ञानिक पद्धतियों पर आधारित कृषि को बढ़ावा देना है।

'विकसित कृषि संकल्प अभियान' की परिकल्पना भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भाकृअनुप) के सहयोग से की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य किसानों को कृषि

कृषि विस्तार प्रभाग, भाकृअनुप-कृषि अनुसंधान भवन-I, पूसा नई दिल्ली-110012

अभियान में ग्रामीण महिलाओं की बड़ी भागीदारी

ग्रामीण सशक्तिकरण से कृषि का सुदृढ़ विकास

विकसित कृषि, समृद्ध किसान

क्षेत्र में हो रहे वैज्ञानिक नवाचारों से जोड़ना, कृषि उत्पादन में वृद्धि करना तथा खेती को अधिक लाभकारी और टिकाऊ बनाना था। इस अभियान के अंतर्गत किसानों को नवीनतम कृषि प्रौद्योगिकियों, उच्च उत्पादक किस्मों के बीज, जैविक खाद, सूक्ष्म पोषक तत्वों, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जल संरक्षण, प्राकृतिक खेती एवं कृषि यंत्रीकरण जैसी महत्वपूर्ण गतिविधियों की जानकारी प्रदान की गई।

साथ ही, किसानों को यह भी अवगत करवाया गया कि वे किस प्रकार कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं तथा जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों का वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक तरीकों से प्रभावी ढंग से सामना कर सकते हैं।

अभियान का संचालन और संरचना

इस अभियान का संचालन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कृषि प्रसार विभाग द्वारा किया गया। इसके सफल क्रियान्वयन हेतु देशभर में स्थित 11 कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान (अटारी) तथा 731 कृषि विज्ञान केंद्रों ने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई। इस अभियान के दौरान देशभर में लगभग 700 जिलों में लगभग 1.30 करोड़ किसानों से कृषि वैज्ञानिकों सीधा संपर्क किया।

इस अभियान का संचालन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कृषि प्रसार विभाग द्वारा किया गया। इसके सफल क्रियान्वयन हेतु देशभर में स्थित 11 कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान (अटारी) तथा 731 कृषि विज्ञान केंद्रों ने सक्रिय भूमिका निभाई। अभियान के दौरान देश के लगभग 700 जिलों में लगभग 1.30 करोड़ किसानों से कृषि वैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित किया।

प्रत्येक राज्य एवं जिले में कार्यरत कृषि विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारी, कृषि विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक तथा कृषि विज्ञान केंद्रों के विस्तार विशेषज्ञ इस अभियान से जुड़े। अभियान को गांव-गांव तक प्रभावी रूप से पहुंचाने के लिए एक सुव्यवस्थित कार्य योजना तैयार की गई, जिसके अंतर्गत किसानों को उनके निकटतम कृषि विज्ञान केंद्रों से जोड़ा गया। इसके साथ ही आदिवासी-बहुल क्षेत्रों,

अभियान का प्रभाव और परिणाम

विकसित कृषि संकल्प अभियान ने अल्प समय में व्यापक और सकारात्मक प्रभाव डाला। इस अभियान के माध्यम से देशभर के लाखों किसानों ने वैज्ञानिक खेती के महत्व को समझा तथा अपने खेतों में आधुनिक तकनीकों को अपनाना शुरू किया। कृषि विज्ञान केंद्रों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, जिन किसानों ने इस अभियान के अंतर्गत प्रशिक्षण एवं तकनीकी मार्गदर्शन प्राप्त किया, उनके खेतों में उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में सुधार दर्ज किया गया। इसके अतिरिक्त, अभियान के दौरान विकसित किए गए 'फार्मर-टू-फार्मर मॉडल' के अंतर्गत प्रगतिशील एवं सफल किसानों को प्रेरक के रूप में चयनित किया गया, जिन्होंने अन्य किसानों को नई तकनीकों एवं नवाचारों का प्रशिक्षण प्रदान किया। इससे कृषि ज्ञान का आदान-प्रदान सशक्त हुआ और तकनीकों का प्रसार तेज गति से संभव हो पाया।

वैज्ञानिक नवाचार से खेती में आत्मनिर्भरता

आकांक्षी जिलों एवं अति पिछड़े इलाकों में रहने वाले किसानों तक विशेष रूप से पहुंच बनाई गई।

खरीफ मौसम को ध्यान में रखते हुए अभियान की अवधि 29 मई से 12 जून 2025 (15 दिवस) निर्धारित की गई। इस दौरान देश के सभी राज्यों में कृषि संबंधी जागरूकता कार्यक्रम, प्रशिक्षण शिविर, प्रक्षेत्र प्रदर्शन, किसान संगोष्ठियां तथा क्षेत्र दौरों का आयोजन किया गया।

वैज्ञानिकों और संस्थाओं की भूमिका

इस अभियान की सफलता में कृषि वैज्ञानिकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। इन्होंने न केवल किसानों को तकनीकी ज्ञान प्रदान किया, बल्कि व्यावहारिक प्रदर्शनों के माध्यम से यह भी प्रदर्शित किया कि आधुनिक एवं वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर खेती को किस प्रकार अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है। कृषि विश्वविद्यालयों एवं विभिन्न अनुसंधान संस्थानों ने भी अभियान के दौरान किसानों को फसल चयन, बीज उपचार, सिंचाई प्रबंधन, कीट एवं रोग नियंत्रण तथा फसलोत्तर प्रबंधन से संबंधित वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक जानकारी उपलब्ध करवाई। इससे किसानों में वैज्ञानिक सोच विकसित हुई और तकनीकों को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ी।

आधुनिक तकनीक की ओर निरंतर बढ़ते कदम

प्रमुख गतिविधियां

- **किसानों से संवाद एवं जागरूकता कार्यक्रम:** अभियान के अंतर्गत विभिन्न गांवों में कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किसानों के साथ प्रत्यक्ष संवाद किया गया। इस दौरान उन्हें नवीन कृषि योजनाओं, आधुनिक तकनीकों, उन्नत बीज किस्मों तथा जैविक खेती के महत्व से अवगत करवाया गया।
- **मृदा परीक्षण एवं मृदा स्वास्थ्य कार्ड वितरण:** किसानों को अपने खेतों की मृदा की जांच करवाने के लिए प्रेरित किया गया। इससे उन्हें यह जानकारी प्राप्त हो सके कि उनकी मृदा में किन पोषक तत्वों की कमी या अधिकता है। इसके आधार पर संतुलित उर्वरक प्रबंधन को अपनाने पर बल दिया गया।
- **आधुनिक कृषि यंत्रों एवं तकनीकों का प्रदर्शन:** अभियान के दौरान विभिन्न कृषि विज्ञान केंद्रों पर आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रदर्शन किया गया, जिनमें ड्रिप सिंचाई प्रणाली, लेजर लैंड लेवलर, मल्चिंग मशीन, सीडड्रिल आदि प्रमुख रहे। इससे किसानों को यांत्रिकीकरण के लाभों से परिचित करवाया गया।
- **कृषि की विविध शाखाओं का समावेश:** अभियान में केवल फसल उत्पादन ही नहीं, बल्कि पशुपालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन, शूकर पालन, बत्तख पालन, पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस, नेटहाउस तथा मशरूम उत्पादन जैसी सहायक कृषि गतिविधियों को भी सम्मिलित किया गया, ताकि किसानों की आय के विविध स्रोत विकसित किए जा सकें।
- **प्राकृतिक एवं जैविक खेती पर विशेष जोर:** अभियान के दौरान किसानों को बताया गया कि रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इसलिए जैविक खाद, वर्मीकम्पोस्ट, नीम आधारित कीटनाशक तथा गोबर खाद के उपयोग को प्रोत्साहित किया गया।
- **महिला किसानों एवं युवाओं की भागीदारी:** इस अभियान का एक महत्वपूर्ण पहलू महिला किसानों और ग्रामीण युवाओं की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करना रहा। कृषि को रोजगारोन्मुख क्षेत्र के रूप में विकसित करने हेतु युवाओं को 'एग्रीकल्चर स्टार्टअप' की दिशा में प्रेरित किया गया।

खरीफ मौसम पर विशेष ध्यान

अभियान के दौरान खरीफ मौसम को विशेष प्राथमिकता दी गई। इस अवधि में धान, मक्का, बाजरा, सोयाबीन, मूंग, उड़द जैसी प्रमुख फसलों की बुआई की जाती है। किसानों को इन फसलों की उन्नत किस्मों, समय पर बुआई, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, उचित सिंचाई तकनीकों तथा रोग-कीट नियंत्रण के आधुनिक उपायों की जानकारी दी गई। इससे किसानों को खरीफ फसलों के उत्पादन और उत्पादकता में सुधार के लिए वैज्ञानिक मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

अंततः यह कहा जा सकता है कि 'विकसित कृषि संकल्प अभियान (खरीफ)' ने भारतीय कृषि को नई दिशा और नई ऊर्जा प्रदान की है। इस अभियान ने किसानों में यह विश्वास उत्पन्न किया कि कृषि केवल एक परंपरागत पेशा नहीं, बल्कि वैज्ञानिक सोच और आधुनिक तकनीकों के समन्वय से एक उन्नत, टिकाऊ एवं लाभकारी व्यवसाय के रूप में विकसित हो सकती है।

इस अभियान की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने किसानों को आत्मनिर्भर बनने, अपनी भूमि एवं पर्यावरण के संरक्षण के प्रति जागरूक होने तथा कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त करने की दिशा में प्रेरित किया। यह पहल न केवल कृषि क्षेत्र के समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त करती है, बल्कि 'विकसित भारत-2047' के लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में भी एक सशक्त और ठोस कदम सिद्ध हुई है।

मौसम पूर्वानुमान आधारित मत्स्य पालन की उपयोगिता

वेद प्रकाश[1], कीर्ति सौरभ[1], आरती कुमारी[1], राकेश कुमार[2] और **योगेश कुमार[3]**

"जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा स्वरूप में बदलाव, समुद्र के जल स्तर में वृद्धि, मौसम में अनियमितता, जल निकायों का अम्लीकरण, जैव विविधता और वन्यजीवन का नुकसान, साथ ही सुखा, जंगलों में अचानक आग और रोगों का प्रकोप जैसे प्राकृतिक संकट पारिस्थितिकी तंत्र को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहे हैं। यह स्थलीय और जलीय दोनों पारिस्थितिकी तंत्र के लिए एक बड़ा संकट है। अनुमान लगाया जा रहा है कि भविष्य में वायु और जल के तापमान में वृद्धि से जलीय पारिस्थितिकी तंत्र और मत्स्य पालन पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकता है। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप पानी का तापमान बढ़ना, अनियमित वर्षा, बाढ़, सूखा और जल स्रोतों का सूखना जैसी समस्याएं सामने आ रही हैं। इन परिस्थितियों से मछलियों के प्रजनन, विकास और जीवनचक्र पर प्रतिकूल असर पड़ता है। ऐसे में सटीक मौसम पूर्वानुमान मछली पालन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकता है। सही समय पर मौसम संबंधी जानकारी मिलने से मत्स्यपालक जलवायु आधारित जोखिमों से बचाव कर सकते हैं और बेहतर निर्णय ले सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि भारी वर्षा या बाढ़ की आशंका हो, तो मत्स्यपालक पहले से तैयारी कर सकते हैं, जिससे जलाशयों में मछलियों की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।"

वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में जलीय पर्यावरण का तापमान बढ़ने की आशंका है, जिससे मीठे तथा खारे पानी की मछलियां प्रभावित हो सकती हैं। मछलियों के आवास स्थलों के तापमान में वृद्धि से उनके व्यवहार, ऑक्सीजन की मांग, रोग संवेदनशीलता, प्रवासन, वृद्धि तथा प्रजनन प्रक्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपयोगिता

यदि मत्स्य पालकों को मौसम का सटीक पूर्वानुमान उपलब्ध हो, तो वे अपने

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना (बिहार); [2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, एनआरएम प्रभाग, केएबी-II, पूसा (नई दिल्ली); [3]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, बावल (हरियाणा)

गर्मी में मत्स्य पालन

- मत्स्य पालक अपने तालाब में बीज संचयन से पहले तालाब की उचित तैयारी करें।
- तालाब की वहन क्षमता के अनुसार उचित मात्रा में बीज संचयन करें।
- मत्स्य पालन के दौरान मछलियों के शारीरिक वजन के 3-5 प्रतिशत के अनुसार आहार प्रदान करें।
- तालाब के पानी की गुणवत्ता की नियमित जांच करते रहें, ताकि मछलियों का स्वास्थ्य बना रहे।

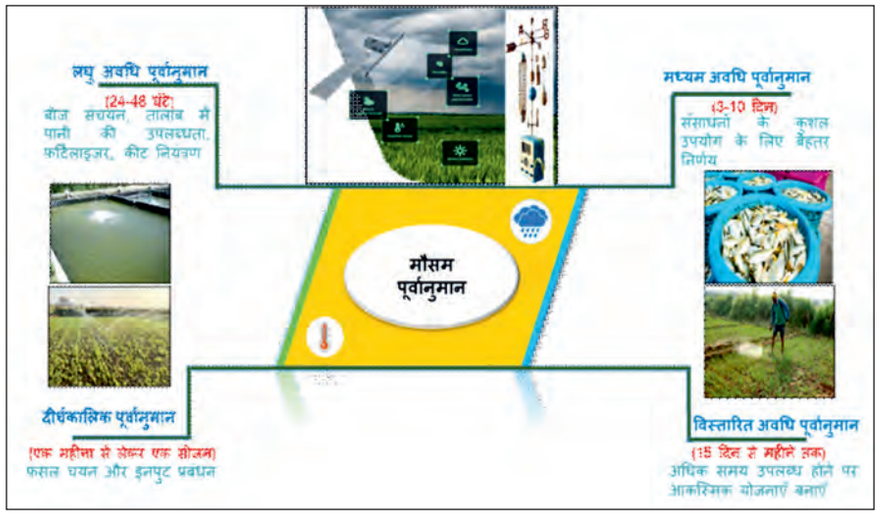

कृषि के लिए मौसम का पूर्वानुमान एवं उसकी अवधि

सर्दियों में मत्स्य पालन

- पूर्ण रूप से विकसित मछलियों को तालाब से निकालने के बाद शेष छोटी मछलियों की ग्रेडिंग अवश्य करें।
- परिवर्तनशील मौसम की स्थिति में मछलियों को उचित मात्रा में आहार दें और यह सुनिश्चित करें कि तालाब में अतिरिक्त आहार न बचे।
- सर्दियों में सतही जल का तापमान निचली परत की तुलना में कम हो जाता है, इसलिए मछलियां निचली परत में रहना पसंद करती हैं। इस कारण तालाब में जल स्तर 6-7 फीट तक बनाए रखने की सिफारिश की जाती है।
- विकसित मछलियों की उचित संख्या तालाब में बनाए रखें, जिससे उत्पादन संतुलित बना रहे।
- नियमित अंतराल पर तालाब का पानी आंशिक रूप से बदलते रहें, इससे जल गुणवत्ता बनी रहती है और मछलियों में अजैविक तनाव कम होता है।

कृषि एवं मत्स्य पालन से जुड़े कार्यों की बेहतर योजना बना सकते हैं, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। मत्स्य उत्पादन पर उर्वरकों के प्रयोग का समय अत्यंत महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। सही समय पर उर्वरकों का उपयोग मत्स्य उत्पादन बढ़ाता है, पोषक तत्वों की हानि को कम करता है और पर्यावरणीय क्षति से बचाव करता है।

इसके विपरीत, अनुचित समय पर उर्वरक प्रयोग और मौसम पूर्वानुमान की अनदेखी से उर्वरकों का अपव्यय हो सकता है तथा मत्स्य उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार मत्स्य पालन में उर्वरकों के उचित उपयोग की जानकारी आवश्यक है। मौसम पूर्वानुमान किसानों को यह निर्णय लेने में सहायता करता है कि कब और किस प्रकार मत्स्य पालन गतिविधियों का प्रबंधन करना है। यदि उर्वरकों का प्रयोग अनुचित समय पर किया जाए, तो संसाधन और धन दोनों की हानि हो सकती है, अत: सटीक जानकारी और पूर्वअनुमान अत्यंत आवश्यक है।

सारणी: मीठे और खारे जल के मछली पालन में मौसम पूर्वानुमान के उपयोग

पूर्वानुमान का प्रकार	मीठे जल की मछली हेतु	खारे जल की मछली हेतु
लघु अवधि पूर्वानुमान	पानी की गुणवत्ता और ऑक्सीजन स्तर की निगरानी करें; बारिश के बाद एरेटर्स का उपयोग करें; मछलियों और अंडों में फंगल संक्रमण से बचाव करें।	लवणता में उतार-चढ़ाव की निगरानी करें; ऑक्सीजन का स्तर सुनिश्चित करें और शैवाल वृद्धि को रोकें।
मध्यम अवधि पूर्वानुमान	गर्मी के दौरान पानी की पूर्ति और आहार प्रबंधन की तैयारी करें।	लवणता नियंत्रण की योजना बनाएं और रोगों के प्रकोप से बचाव करें।
विस्तारित अवधि पूर्वानुमान	आंगुलिक की स्टॉकिंग की योजना बनाएं; तापमान में बदलाव से पहले पानी की गुणवत्ता की निगरानी करें।	मौसमी लवणता और तापमान परिवर्तनों के लिए खेती प्रथाओं को समायोजित करें।
दीर्घकालिक पूर्वानुमान	मानसून आधारित तालाबों के लिए दीर्घकालिक योजना बनाएं; सूखे की तैयारी करें।	चक्रवात/तूफान से सुरक्षा के लिए बुनियादी ढांचा तैयार करें; मौसमी लवणता परिवर्तनों को प्रबंधित करें।

मौसम पूर्वानुमान की अवधि

मौसम पूर्वानुमान की घोषणाएं अलग-अलग समय अंतराल पर विभिन्न अवधियों के लिए की जाती हैं। पूर्वानुमान की अवधि के आधार पर इन्हें सामान्यत: चार वर्गों में विभाजित किया जाता है। ये सेवाएं किसानों की वास्तविक समय की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। इसके अतिरिक्त ये मत्स्य उत्पादन और खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए मौसम आधारित मत्स्य प्रबंधन रणनीतियों और संचालन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। मौसम पूर्वानुमान किसानों को अनुकूल मौसम का अधिकतम लाभ उठाने और प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव को कम करने में सहायता करता है। इसके माध्यम से मत्स्य उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार संभव होता है, जिससे उत्पादन क्षमता और आर्थिक लाभ दोनों में वृद्धि होती है।

वर्षा के मौसम में मत्स्य पालन

- वर्षा की आशंका को देखते हुए पानी के पीएच स्तर की नियमित निगरानी करें।
- तापमान जैसे अजैविक तनाव कारक मछलियों के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, इसलिए इन पर विशेष ध्यान दें।
- वर्षा के दौरान तालाब में घुलित ऑक्सीजन की कमी हो सकती है, अत: जलवाहक (एरेटर) का उपयोग करके तालाब को ऑक्सीजन युक्त बनाएं।
- मछली बीज उत्पादन करने वाले किसानों को प्रेरित प्रजनन (इंड्यूस्ड ब्रिडिंग) प्रारंभ करने तथा तालाब को बीज उत्पादन हेतु तैयार करने की सलाह दी जाती है।
- परिवर्तनशील मौसम में मछलियों को संतुलित मात्रा में आहार दें और अधिक आहार डालने से बचें।
- तालाब की जल गुणवत्ता सुनिश्चित करें, ताकि अंडे किसी भी फंगल संक्रमण से प्रभावित न हों।

सारणी: जलवायु परिवर्तन संबंधी पूर्वानुमान और मत्स्य पालन पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन संबंधी पूर्वानुमान	मत्स्य पालन पर प्रभाव
सतही हवा का तापमान	मत्स्य निवास की उपलब्धता और प्रजाति समृद्धि पर प्रभाव
वर्षापात	मछली के विकास और स्वास्थ्य पर प्रभाव
चरम मौसमी घटनाएं	मछली प्रजनन पर प्रभाव
समुद्र तल में वृद्धि	जल की गुणवत्ता कम होने और प्रदूषकों के बढ़ने से परियावरणीय समस्या
हिमालयी ग्लेशियर का प्रभाव	मत्स्य बीज उत्पादन एवं परिवहन पर प्रतिकूल प्रभाव
	मत्स्य प्रजातियों के आवास स्थल में भौगोलिक परिवर्तन

मौसम पूर्वानुमान से लाभ लेने की प्रभावी रणनीतियां

मौसम पूर्वानुमान का सही उपयोग मत्स्य पालन में उत्पादन बढ़ाने और संभावित नुकसान को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके लिए मत्स्य पालकों और मछुआरों को सबसे पहले अपना मोबाइल नंबर नजदीकी कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) में पंजीकृत करवाना चाहिए। पंजीकरण के बाद उन्हें मौसम पूर्वानुमान से संबंधित सूचनाएं व्हाट्सएप या एसएमएस के माध्यम से नि: शुल्क प्राप्त होती हैं। यह सेवा वर्तमान में सभी पंजीकृत किसानों और मछुआरों के लिए उपलब्ध है।

इन सूचनाओं के माध्यम से तापमान, वर्षा, हवा की गति, जल स्तर तथा घुलित ऑक्सीजन की स्थिति जैसी महत्वपूर्ण जानकारियां नियमित रूप से प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त कृषि विज्ञान केंद्र और मत्स्य विभाग द्वारा तहसील स्तर पर प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, जहां मछुआरों को मौसम पूर्वानुमान के आधार पर जल प्रबंधन, रोग नियंत्रण तथा मछली उत्पादन बढ़ाने की रणनीतियां सिखाई जाती हैं।

इसके अतिरिक्त मत्स्य पालक www.imdagrimet.gov.in पोर्टल के माध्यम से भी मौसम पूर्वानुमान प्राप्त कर सकते हैं। इस पोर्टल पर जिला, तहसील और तिथि जैसी जानकारी भरकर किसान और मछुआरे अपने क्षेत्र का सटीक मौसम पूर्वानुमान डाउनलोड कर सकते हैं। इन पूर्वानुमानों की सहायता से मछुआरे जल गुणवत्ता की निगरानी, आहार एवं दवा प्रबंधन की योजना, चक्रवात एवं भारी वर्षा से बचाव की तैयारी तथा मत्स्य बीज उत्पादन का उचित समय निर्धारण कर सकते हैं। इसके लिए मौसम आधारित निर्णय लेना अत्यंत आवश्यक है।

मत्स्य पालकों को सलाह दी जाती है कि वे नियमित रूप से मौसम पूर्वानुमान का उपयोग करें और अपने स्थानीय कृषि विज्ञान केंद्रों से जुड़े रहें, ताकि समय पर मिलने वाली सलाह और नवीन तकनीकों का अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

मौसम पूर्वानुमान आधारित मत्स्य पालन न केवल मछुआरों की सुरक्षा सुनिश्चित करता है, बल्कि मत्स्य उत्पादन को भी बढ़ावा देता है। मौसम आधारित निर्णयों से आय में वृद्धि, संसाधनों की बचत तथा मत्स्य पालन की स्थिरता बनी रहती है। यदि सरकार, वैज्ञानिक संस्थान और मछुआरा समुदाय मिलकर इस तकनीक को अपनाएं, तो यह भारत में 'नीली क्रांति' को और अधिक सशक्त बना सकता है। आधुनिक मौसम पूर्वानुमान तकनीकों से मछुआरों को जोड़ना न केवल उनके जीवन की रक्षा करेगा, बल्कि उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में भी सहायक सिद्ध होगा। ■

सारणी: जलवायु परिवर्तन का जलीय पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव

परिवर्तन का स्वरूप	कारण	प्रभाव
अंतर स्थलीय जल के तापमान में वृद्धि	हवा के तापमान में वृद्धि	• घुलित ऑक्सीजन में कमी (हाइपोक्सिया/अनोक्सिया) • हानिकारक जीवाणुओं में वृद्धि और रोगों तथा परजीवी संक्रमण में अधिकता • पादप पल्वक, परिपादप और जलमग्न मैक्रोसाइट्स (यूट्रॉफिकेशन) की प्राथमिक उत्पादकता में वृद्धि • पानी की गुणवत्ता और मात्रा में कमी (पानी पर दबाव) • जल की लवणता और पीएच में परिवर्तन • मेटाबॉलिज्म में परिवर्तन • जल की अपर्याप्तता अथवा सूखा जैसी स्थिति
बाढ़	वर्षा की तीव्रता, आवृत्ति, मौसम और परिवर्तनशीलता में परिवर्तन जल की लवणता में परिवर्तन	• जल के प्रवाह दर और पी-एच में परिवर्तन • मत्स्य पालन वाले आवास स्थान की संरचनात्मक क्षति • संक्रमण रोगों के लिए उत्तरदायी कारकों और परभक्षी मछलियों का जल क्षेत्र में प्रवेश
समुद्र जलस्तर में वृद्धि	अधिक हिमनदों के पिघलने के कारण उच्च तापमान	• तटीय अंतर स्थलीय जल निकायों और समुद्रों के निचले भाग की लवणता में वृद्धि • तटीय क्षेत्र मत्स्य आवास स्थान में संरचनात्मक क्षति
महासागरीय अम्लीकरण	जल में अधिक कार्बन डाइऑक्साइड का घोलना	• जल के पीएच का अधिक अम्लीय होना जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव मात्स्यिकी और अन्य जलीय जंतुओं पर पड़ता है

तनावग्रस्त गायों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका

नीलम कुशवाहा

"जलवायु परिवर्तन के कारण वैश्विक स्तर पर तापमान में निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत में हाल के वर्षों में अत्यधिक गर्मी के लंबे दौर देखने को मिले हैं, जिनके परिणामस्वरूप पशुधन की उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। गर्मी के तनाव के कारण दुग्ध उत्पादन में लगभग 30 प्रतिशत तक की गिरावट तथा गर्भाधान दर में 20 से 30 प्रतिशत तक की कमी दर्ज की गई है। जब किसी पशु की गर्मी सहन करने की क्षमता, उसके द्वारा शरीर से ऊष्मा का अपव्यय करने की क्षमता से अधिक हो जाती है, तब गर्मी का तनाव उत्पन्न होता है। अत्यधिक तापमान के प्रभाव से पशुओं में ऑक्सीडेटिव (ऑक्सीकारक) तनाव बढ़ जाता है। इससे उनकी प्रतिरक्षा प्रणाली और प्रजनन तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। गर्मी के कारण दुधारू पशुओं के विकास, प्रजनन तथा दुग्ध उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हालांकि, पर्यावरणीय प्रबंधन और आहार संबंधी सुधारों के माध्यम से गर्मी के दुष्प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। अत्यधिक गर्मी के कारण पशुओं में ऑक्सीडेटिव (ऑक्सीकारक) क्षति उत्पन्न होती है, जो उनके स्वास्थ्य और उत्पादन क्षमता को प्रभावित करती है। इसलिए इस क्षति को रोकने के लिए आहार में पर्याप्त मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्वों और एंटीऑक्सीडेंट्स की पूर्ति करना आवश्यक होता है।"

गर्मी से तनावग्रस्त पशुओं में श्वसन दर में वृद्धि, हांफना, शरीर के तापमान में बढ़ोतरी, अत्यधिक लार स्राव, अधिक पसीना आना, चारे का सेवन कम होना, पानी का अधिक सेवन, शारीरिक विकास में कमी, दुग्ध उत्पादन में गिरावट तथा प्रजनन क्षमता में कमी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसे पशु सामान्यत: छाया की तलाश करते हैं और लेटने की बजाय खड़े रहना अधिक पसंद करते हैं।

गर्मी के तनाव को कम करने की रणनीतियों में पर्यावरण का भौतिक संशोधन, गर्मी-सहिष्णु नस्लों का आनुवंशिक विकास तथा पोषण प्रबंधन प्रमुख रूप से शामिल हैं। हालांकि गर्मी प्रतिरोधी नस्लों का विकास एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है, इसलिए वर्तमान परिस्थितियों में पोषण प्रबंधन और पर्यावरणीय संशोधन सबसे अधिक व्यावहारिक एवं प्रभावी उपाय माने जाते हैं।

जब दुधारू गायों को उच्च तापमान और अधिक आर्द्रता वाले वातावरण का सामना करना पड़ता है, तो पशु और पर्यावरण के

सहायक प्राध्यापक, पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज (बिहार)

गर्मी के तनाव में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व

सूक्ष्म पोषक तत्व कुछ आवश्यक पोषक तत्व होते हैं। इनकी आवश्यकता शरीर को कम मात्रा में होती है, लेकिन समग्र स्वास्थ्य, उत्पादन क्षमता और रोग प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखने में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। स्थूल खनिज, सूक्ष्म खनिज तथा विटामिन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व गर्मी के तनाव के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में विशेष योगदान देते हैं। ये पोषक तत्व पशुओं की उत्पादन क्षमता को बनाए रखने, ऑक्सीकारक तनाव को निष्क्रिय करने तथा कमजोर होती प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने में सहायक होते हैं। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि दुधारू पशुओं में हल्के से लेकर गंभीर स्तर के गर्मी तनाव की स्थिति में सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता सामान्य अवस्था की तुलना में 7 से 25 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

बीच ताप-विनिमय को सुचारू बनाए रखने हेतु वातावरण को ठंडा रखना आवश्यक होता है। इसके लिए पशुशाला में पंखों, स्प्रिंक्लर अथवा फॉगर्स का उपयोग करना चाहिए तथा पूरे दिन स्वच्छ एवं पर्याप्त मात्रा में पीने योग्य पानी उपलब्ध करवाना चाहिए। अधिक आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में पंखों के साथ स्प्रिक्लर का संयुक्त उपयोग अधिक प्रभावी सिद्ध होता है।

गर्मी से तनावग्रस्त पशु की चारा खाने में अरुचि

पोषण संबंधी संशोधन मुख्य रूप से पशुओं के आंतरिक ताप उत्पादन को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। इसके अंतर्गत उच्च गुणवत्ता वाला हरा चारा खिलाना, चारा खिलाने की आवृत्ति बढ़ाना, दिन के ठंडे समय में आहार देना तथा संतुलित मात्रा में फाइबर की आपूर्ति करना शामिल है।

पशुओं के लिए पानी की निरंतर उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। यह शरीर के तापमान के नियमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ ही गर्मी के तनाव से होने वाली ऑक्सीडेटिव क्षति को कम करने के लिए आहार में सूक्ष्म पोषक तत्वों और एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा का समुचित संशोधन भी किया जाना चाहिए।

जस्ता

जस्ता पशुओं में विकास, प्रतिरक्षा और प्रजनन संबंधी प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक तत्व है। यह ऑक्सीकारक क्षति को रोकने में मदद करता है तथा इसकी कमी से रोग प्रतिरोधक क्षमता में गिरावट आती है। पशुओं के शरीर में जस्ता का दीर्घकालिक संचयन नहीं होता, इसलिए प्रतिदिन इसकी पर्याप्त आपूर्ति आवश्यक है। गर्मी के मौसम में जस्ता अनुपूरण से गर्मी तनाव के दुष्प्रभावों में कमी आती है।

स्थूल खनिज (सोडियम, पोटेशियम एवं मैग्नीशियम)

सामान्यत: चारा खनिजों का पर्याप्त स्रोत नहीं होता, इसलिए पशुओं के आहार में उच्च गुणवत्ता वाले खनिज मिश्रण को उचित मात्रा में शामिल करना आवश्यक है। गर्म जलवायु में खनिज अनुपूरण न केवल पोषक तत्वों की कमी को पूरा करता है, बल्कि गर्मी से होने वाले दुष्प्रभावों को भी कम करता है।

गर्मी से प्रभावित पशुओं में अत्यधिक पसीना निकलता है, जिससे पोटेशियम और सोडियम की अधिक हानि होती है। इसी कारण गर्मियों के मौसम में इन खनिजों की आवश्यकता बढ़ जाती है। आहार में सोडियम बाइकार्बोनेट, पोटेशियम कार्बोनेट अथवा दोनों को शामिल कर उचित धनायन-ऋणायन संतुलन बनाए रखा जा सकता है।

सोडियम और पोटेशियम दूध उत्पादन बढ़ाने, चारे के सेवन में सुधार तथा दूध में

तनावग्रस्त पशुओं का झुंड से अलग होने के बजाय एक-दूसरे के पास समूह में खड़ा होना

सेलेनियम

सेलेनियम ग्लूटाथियोन पेरोक्सीडेज एंजाइम का प्रमुख घटक है, जो कोशिकाओं से मुक्त कणों को हटाकर ऊतकों को ऑक्सीकारक तनाव से सुरक्षित रखता है। गर्मी के दौरान पशुओं के रक्त प्लाज्मा में सेलेनियम का स्तर घट जाता है। आहार में सेलेनियम की पूर्ति से जठरांत्रीय स्वास्थ्य, प्रजनन क्षमता तथा दुग्ध उत्पादन में सुधार होता है और चयापचय संतुलन बना रहता है।

तनावग्रस्त पशुओं का लेटने के बजाय खड़े रहना

वसा प्रतिशत बनाए रखने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, ये खनिज पशुओं में जल संतुलन, आयन संतुलन तथा अम्ल क्षार संतुलन को बनाए रखने के लिए भी अत्यंत आवश्यक हैं। पोटेशियम की अधिक मात्रा मैग्नीशियम के अवशोषण को कम कर देती है, इसलिए गर्मी के मौसम में मैग्नीशियम की पूर्ति पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

सूक्ष्म खनिज

गर्मी से तनावग्रस्त दुधारू पशुओं में जस्ता, सेलेनियम और क्रोमियम जैसे सूक्ष्म खनिजों की समुचित पूर्ति उत्पादन क्षमता, रोग प्रतिरोधक क्षमता, थन स्वास्थ्य तथा प्रजनन क्षमता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ये खनिज ऊतकों में होने वाली ऑक्सीकारक क्षति को कम करने में भी सहायक होते हैं।

क्रोमियम

क्रोमियम गर्म वातावरण के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने वाला एक महत्वपूर्ण सूक्ष्म तत्व है। यह इंसुलिन की क्रिया को बेहतर बनाता है और ऊतकों में ग्लूकोज के उपयोग की क्षमता को बढ़ाता है। कार्बनिक क्रोमियम स्रोत अकार्बनिक स्रोतों की तुलना में अधिक प्रभावी ढंग से अवशोषित होते हैं।

विटामिन

विटामिन शरीर में विभिन्न चयापचय क्रियाओं के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। दुधारू पशुओं के आहार में विटामिन ए, विटामिन सी और नियासिन (विटामिन बी$_3$) की पूर्ति गर्मी तनाव के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में सहायक होती है।

विटामिन 'ई'

विटामिन 'ई' एक शक्तिशाली प्रतिउपचायक (एंटीऑक्सीडेंट) है, जो प्रतिरक्षा प्रणाली, ऊतकों की अखंडता और प्रजनन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। यह कोशिका झिल्लियों को प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों से होने वाली क्षति से बचाता है। गर्मी के मौसम में ऑक्सीकारक तनाव बढ़ने के कारण आहार में अतिरिक्त विटामिन 'ई' की पूर्ति आवश्यक हो जाती है।

विटामिन 'सी'

गर्मी से तनावग्रस्त दुग्ध उत्पादक पशुओं में रक्त प्लाज्मा में विटामिन सी का स्तर घट जाता है। विटामिन 'सी' जस्ता के साथ मिलकर मुक्त कणों को निष्क्रिय करने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त, यह फोलिक एसिड के अवशोषण को भी बढ़ाता है, जिससे समग्र स्वास्थ्य में सुधार होता है।

नियासिन (विटामिन बी$_3$)

नियासिन शरीर में रक्त वाहिकाओं के प्रसार को बढ़ाता है, जिससे पसीना ग्रंथियों की सक्रियता बढ़ती है। अधिक पसीना निकलने से पशुओं के शरीर की अतिरिक्त गर्मी बाहर निकलती है और तापमान नियंत्रण में सहायता मिलती है।

पर्यावरण और आहार संबंधी संशोधनों को पशुओं पर गर्मी के प्रभाव प्रकट होने से पहले ही लागू कर देना चाहिए। आहार में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा का समुचित संशोधन न केवल दुग्ध उत्पादन करने वाली गायों के लिए आवश्यक है, बल्कि अन्य पशुओं के लिए भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। यह विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है कि पर्यावरणीय तापमान में होने वाला परिवर्तन गर्मी तनाव का प्रमुख कारण होता है, जबकि आहार संबंधी संशोधन इस प्रभाव को कम करने में सहायक भूमिका निभाते हैं।

पशु स्वास्थ्य का बेहतर प्रबंधन जरूरी

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

प्रीति उपाध्याय[1], निर्मल पाण्डेय[2], राज कुमार जाट और मनीष कुमार विश्वकर्मा[3]

"भारतीय कृषि देश की लगभग 50 प्रतिशत आबादी को रोजगार प्रदान करती है तथा सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में महत्वपूर्ण योगदान देती है। हालांकि, बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन और संसाधनों की कमी जैसी चुनौतियों के कारण पारंपरिक कृषि पद्धतियां अब पर्याप्त नहीं रह गई हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए कृषि में स्वचालन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। एआई ने कृषि क्षेत्र में क्रांति ला दी है, जिससे उत्पादकता बढ़ाने, संसाधनों का कुशल उपयोग सुनिश्चित करने और किसानों की आय में वृद्धि करने में सहायता मिली है। इस लेख में कृषि में एआई के विभिन्न अनुप्रयोगों जैसे सिंचाई, निराई-गुड़ाई, ड्रोन तकनीक तथा जोखिम प्रबंधन पर विस्तार से चर्चा की गयी है।"

विश्व की जनसंख्या वर्ष 2050 तक लगभग 10 अरब तक पहुंचने का अनुमान है। इसके परिणामस्वरूप खाद्य उत्पादन में 50 प्रतिशत से अधिक वृद्धि की आवश्यकता होगी। वर्तमान में विश्व की कुल भूमि का लगभग 37.7 प्रतिशत भाग कृषि के लिए उपयोग किया जा रहा है, किंतु जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों की बढ़ती कमी के कारण कृषि उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए कृषि 4.0 (एग्रीकल्चर 4.0) की अवधारणा सामने आई है, जिसमें बिग डेटा एनालिटिक्स, सटीक कृषि (प्रेसिजन फार्मिंग) तथा इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आईओटी) जैसी उन्नत तकनीकों का उपयोग किया जाता है। एआई और मशीन लर्निंग (एमएल) के माध्यम से किसानों को वास्तविक समय में डेटा-आधारित निर्णय लेने में सहायता मिलती है, जिससे पानी, उर्वरक तथा कीटनाशकों का अधिक कुशल और संतुलित उपयोग संभव हो पाता है।

[1]शाकीय विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, पूसा, नई दिल्ली-110012; [2]भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद (आईसीएचआर), नई दिल्ली-110001; [3]बॉरलाग इंस्टिट्यूट फॉर साउथ एशिया, पूसा, समस्तीपुर-848125 (बिहार)

कृत्रिम बुद्धिमत्ता

कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक ऐसी उन्नत तकनीक है, जो मानव बुद्धिमत्ता की नकल करते हुए सीखने, विश्लेषण करने, पैटर्न पहचानने तथा स्वचालित रूप से निर्णय लेने में सक्षम होती है। कृषि क्षेत्र में एआई का उपयोग खेती को अधिक सटीक, कुशल और लाभकारी बनाने में किया जा रहा है।

कृषि में एआई के प्रमुख घटक

- **मशीन लर्निंग (एमएल):** यह एआई की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जो कंप्यूटर प्रणालियों को डेटा से सीखने और समय के साथ अपने प्रदर्शन में सुधार करने की क्षमता प्रदान करती है।
- **डीप लर्निंग:** इसमें न्यूरल नेटवर्क का उपयोग करके जटिल समस्याओं जैसे रोग पहचान और उपज पूर्वानुमान का समाधान किया जाता है।
- **कंप्यूटर विजन:** यह तकनीक छवियों और वीडियो के माध्यम से फसलों की निगरानी, रोग पहचान और खरपतवार नियंत्रण में सहायक होती है।

एआई के माध्यम से किसान निम्न कृषि कार्यों को स्वचालित कर सकते हैं:

- बीज बोना तथा फसल कटाई
- मृदा एवं फसल स्वास्थ्य की निगरानी
- सिंचाई प्रबंधन
- कीट एवं रोग नियंत्रण

सोलर द्वारा संचालित सिंचाई प्रणाली

फसल उत्पादन में एआई के अनुप्रयोग

एआई-चालित सिंचाई प्रणाली

कृषि में लगभग 85 प्रतिशत स्वच्छ जल का उपयोग होता है, जिससे जल संकट गंभीर होता जा रहा है। एआई-आधारित स्मार्ट सिंचाई प्रणालियां मृदा की नमी, मौसम और फसल की आवश्यकताओं का विश्लेषण करके पानी की बचत सुनिश्चित करती हैं।

- **सेंसर तकनीक:** मिट्टी में लगे सेंसर वास्तविक समय में नमी और तापमान की जानकारी प्रदान करते हैं।
- **ड्रिप सिंचाई:** एआई नियंत्रित ड्रिप सिस्टम जल अपव्यय को कम करता है।
- **मोबाइल एप्लिकेशन:** किसान अपने स्मार्टफोन से सिंचाई प्रणाली को नियंत्रित कर सकते हैं।

कृषि में ड्रोन तकनीक

ड्रोन (मानवरहित हवाई वाहन)कृषि में क्रांति ला रहे हैं और कई कार्यों में मदद कर रहे हैं।

- **फसल निगरानी:** मल्टीस्पेक्ट्रल कैमरों से फसलों के स्वास्थ्य का विश्लेषण।
- **कीटनाशक छिड़काव:** ड्रोन द्वारा सटीक छिड़काव से रसायनों की बचत।
- **मृदा विश्लेषण:** ड्रोन मृदा की गुणवत्ता और नमी का आकलन करते हैं।

भावी परिदृश्य

भारत में कई स्टार्टअप और सरकारी पहलें एआई को कृषि में लागू कर रही हैं, जैसे:

फसल: आईओटी और एआई के माध्यम से स्मार्ट फसल प्रबंधन।

निंजा कार्ट: एआई आधारित आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन।

ई-नाम: किसानों को ऑनलाइन बाजार से जोड़ना।

चुनौतियां: ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना की कमी और किसानों को एआई तकनीक के उपयोग के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण की आवश्यकता, ये दोनों मिलकर एआई आधारित कृषि समाधानों के व्यापक अनुप्रयोग में बाधा डालते हैं।

एआई ने भारतीय कृषि को अधिक उत्पादक, टिकाऊ और लाभदायक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। स्मार्ट सिंचाई, ड्रोन तकनीक और स्वचालित निराई जैसी समाधानों से किसानों की आय बढ़ी है और पर्यावरण संरक्षण में मदद मिली है। भविष्य में एआई और आईओटी के संयोजन से कृषि और अधिक कुशल होगी, जिससे भारत एक आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था बन सकेगा। इस प्रकार, एआई-सक्षम कृषि न केवल किसानों के लिए वरदान साबित हो रही है, बल्कि यह वैश्विक खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। ■

एग्रोएडवाइजरी के लिए प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (एनएलपी)

कृषि क्षेत्र में किसानों को सही समय पर सटीक सलाह (एग्रोएडवाइजरी) प्रदान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत एक बहुभाषी देश है और अधिकांश किसान निरक्षर हैं। इसके कारण, यदि सलाह और सूचना अंतिम उपयोगकर्ता की भाषा में उपलब्ध न हो, तो बहुत सारी सामग्री इच्छित लोगों तक नहीं पहुंच पाती। पारंपरिक एग्रोएडवाइजरी प्रणाली में कृषि विशेषज्ञों, मौसम पूर्वानुमानों और सरकारी रिपोर्टों पर निर्भर रहना पड़ता था, जिससे यह प्रक्रिया धीमी और सीमित हो जाती थी। इस अंतर को प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (एनएलपी) के माध्यम से प्रभावी रूप से भरा जा सकता है। एनएलपी एआई की एक शाखा है, जो कंप्यूटर को मानवीय भाषा को समझने, विश्लेषण करने और उत्तर देने में सक्षम बनाती है। इसके उपयोग से किसान अपनी स्थानीय भाषा में सवाल पूछ सकते हैं और सरल व सटीक उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। एआई-सक्षम चैटबॉट्स और वॉयस असिस्टेंट किसानों के सवालों का जवाब उनकी स्थानीय भाषा में तुरंत दे सकते हैं, जिससे जानकारी व्यक्तिगत, त्वरित और सुलभ बन जाती है। किसान व्हाट्सएप, टेलीग्राम, मोबाइल ऐप या कॉल सेंटर के माध्यम से खेती, मौसम, उर्वरक, कीटनाशक और फसल प्रबंधन से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसान सुविधाऔर एआई आधारित चैटबॉट जैसे प्लेटफॉर्म किसानों को त्वरित और सटीक सलाह प्रदान करते हैं।

फील्ड मैपिंग हेतु जीपीएस संग्रहण

आधुनिक सिंचाई प्रणाली

मार्च के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह[1], कपिला शेखावत[1], अंजली पटेल[2], विनय उपाध्याय[3], एस.एस. राठौर[1] और **प्रवीण कुमार उपाध्याय[1]**

"मार्च का महीना भारतीय कृषि कार्यों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। यह भारतीय कैलेण्डर के नववर्ष के प्रारंभ तथा मौसम परिवर्तन का समय है। इस महीने में शीत ऋतु समाप्ति की ओर बढ़ती है और तापमान में धीरे-धीरे वृद्धि होने लगती है। इसके साथ ही रबी फसलें परिपक्व होकर कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। गेहूं, चना, मटर, सरसों तथा जौ जैसी प्रमुख रबी फसलों की कटाई प्रायः इसी माह में आरंभ होती है। किसान लंबे समय से की गई मेहनत का परिणाम प्राप्त करते हैं, इसलिए यह महीना उनके लिए अत्यंत व्यस्त और महत्वपूर्ण होता है। इस अवधि में कटाई के साथ-साथ खेतों की सफाई, फसल अवशेषों का समुचित निपटान तथा अनाज के सुरक्षित भंडारण की व्यवस्था की जाती है। उचित सुखाने, सफाई और भंडारण प्रबंधन से उपज की गुणवत्ता बनाए रखने में सहायता मिलती है। साथ ही किसान आगामी खरीफ फसलों की तैयारी भी प्रारंभ कर देते हैं, जिसमें भूमि की जुताई, खेतों की देखरेख, खाद एवं बीज का चयन तथा सिंचाई की योजना बनाना शामिल है। खेतों को खाली कर अगली फसल के लिए वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया जाता है। इस प्रकार कृषि कार्यों की दृष्टि से मार्च माह अति महत्वपूर्ण है।"

मार्च में बसंतकालीन फसलों की बुआई की तैयारी भी शुरू हो जाती है। बसंतकालीन मक्का और गन्ना के साथ-साथ ग्रीष्मकालीन दलहनी फसलों की बुआई के लिए यह उपयुक्त समय माना जाता है। इस दौरान हरे चारे की कमी अक्सर देखी जाती है, इसलिए खाली खेतों में ग्रीष्मकालीन चारा फसलें जैसे ज्वार, बाजरा और मक्का बोकर पशुओं के लिए हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है।

बागवानी और सब्जी उत्पादन की दृष्टि से भी मार्च का विशेष महत्व है। गर्मियों की सब्जियां जैसे-कद्दू, लौकी, खीरा और तरबूज की बुआई इस समय की जाती है। इसके साथ ही आम, अमरूद और केला जैसे फलदार पौधों की नियमित देखभाल आवश्यक होती है। समय पर खाद एवं उर्वरकों का संतुलित प्रयोग और समुचित सिंचाई से उत्पादन में वृद्धि संभव है। मृदा की जांच कर फसलों के लिए उपयुक्त उर्वरकों का चयन करना लाभकारी सिद्ध होता है।

इसके साथ ही जल प्रबंधन पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है, क्योंकि तापमान बढ़ने से खेतों में नमी तेजी से कम होती है। अतः सिंचाई का उचित प्रबंधन और नमी संरक्षण उपाय अपनाना आवश्यक है। फसलों को कीट एवं रोगों से बचाने के लिए समेकित कीट प्रबंधन एवं जैविक नियंत्रण उपायों का प्रयोग करना चाहिए।

[1]सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012; [2]सस्य विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर-492012 (छत्तीसगढ़); [3]सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

कृषि कार्यों के साथ पशुपालन की देखभाल भी आवश्यक है। इस समय पशुओं के स्वास्थ्य की निगरानी, संतुलित आहार की व्यवस्था तथा गर्मियों से बचाव के उपाय किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि यंत्रों की मरम्मत और रखरखाव भी किया जाता है, ताकि वे आगामी मौसम के लिए पूर्णत: तैयार रहें।

इस प्रकार मार्च का महीना केवल रबी फसलों की कटाई तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आगामी कृषि चक्र की सुदृढ़ नींव रखने का भी महत्वपूर्ण समय है। उचित योजना, संसाधनों का कुशल प्रबंधन और वैज्ञानिक पद्धतियों के अपनाने से किसान इस अवधि का अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

गेहूं

जल प्रबंधन

गेहूं की फसल में जब भूमि में उपलब्ध जल की इतनी कमी हो जाए कि पौधों की वृद्धि एवं विकास दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हो, उस अवस्था में आवश्यकतानुसार सिंचाई कर देनी चाहिए। गेहूं की फसल में सिंचाई मृदा में 50 प्रतिशत उपलब्ध जल शेष रहने पर करनी चाहिए।

इस समय फसल फूल निकलने, दाना भरने अथवा दाना सख्त होने की अवस्था में होती है। इन अवस्थाओं में मृदा में नमी की कमी होने से उपज में भारी कमी आ सकती है। अत: किसान अपनी फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई अवश्य करें। इससे गर्म हवाओं का दाने बनने पर प्रतिकूल प्रभाव कम होगा तथा तेज हवाओं से फसल गिरने की आशंका भी घटेगी।

तेज हवा चलने की स्थिति में सिंचाई न करें अथवा रात में करें, क्योंकि फसल गिरने का डर रहता है।

पौध संरक्षण

गेहूं में रोग एवं कीटों के आक्रमण के कारण उत्पादन क्षमता कम हो जाती है और कभी-कभी फसल पूरी तरह नष्ट हो जाती है। अत: किसान समय पर रोग एवं कीट प्रबंधन कर अधिकतम पैदावार प्राप्त कर सकते हैं। गेहूं में लगने वाले प्रमुख रोग एवं कीट इस प्रकार हैं:

पीला या धारीदार रतुआ रोग

लक्षण: यह रोग पक्सीनिया स्ट्राइफारमिस नामक कवक द्वारा होता है। प्रारंभ में पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले रंग की धारियां दिखाई देती हैं, जो धीरे-धीरे पूरी पत्ती को पीला कर देती हैं तथा पीला चूर्ण भूमि पर गिरने लगता है। यदि यह रोग कल्ले निकलने की अवस्था या उससे पहले आ जाए, तो बाली नहीं बनती। तापमान बढ़ने पर रोग का प्रकोप कम हो जाता है और धारियां काली पड़ जाती हैं।

गेहूं का पीला या धारीदार रतुआ रोग

रोकथाम: उन्नत एवं प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें। प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी. (टिल्ट) 500 मि.ली. या हेक्साकोनाजोल 1.0 लीटर प्रति हैक्टर अथवा मैंकोजेब 75 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

भूरा या पर्ण रतुआ रोग

लक्षण: यह रोग पक्सीनिया रिकोंडिटा ट्रिटिसाई नामक कवक द्वारा होता है। प्रारंभ में पत्तियों की ऊपरी सतह पर नारंगी रंग के सुई की नोक जैसे बिंदु उभरते हैं, जो बाद में घने होकर पूरी पत्ती एवं पर्णवृंत पर फैल जाते हैं। गर्मी बढ़ने पर धब्बों का रंग काला हो जाता है। इससे उपज में लगभग 30 प्रतिशत तक हानि हो सकती है।

रोकथाम: धब्बे दिखाई देने पर 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी. (टिल्ट) का एक या दो बार छिड़काव करें।

भूरा या पर्ण रतुआ रोग

कंडवा रोग

लक्षण: यह अंत: बीजजनित रोग है, जिसका कारक अस्टीलैगो सेजेटम ट्रिटिसाई कवक है। संक्रमित बीज ऊपर से स्वस्थ दिखाई देता है। लक्षण बाली निकलने पर दिखाई देते हैं। दानों के स्थान पर काला चूर्ण बन जाता है, जो हवा से फैलकर अन्य बालियों को संक्रमित करता है।

कंडवा रोग का प्रकोप

रोकथाम: रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला दें। बीजोपचार हेतु बीटावैक्स 2.5 ग्राम, कार्बेण्डाजिम 2.5-3.0 ग्राम/कि.ग्रा., कार्बोक्सिन 75 डब्ल्यू.पी. 1.5 ग्राम या टेबुकानाजोल 2.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें।

करनाल बंट

लक्षण: इसका कारक टिलेसिया इंडिका कवक है। इसे गेहूं का कैंसर भी कहते हैं। इसका प्रकोप पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड एवं उत्तरी राजस्थान में अधिक होता है। दानों के अंदर काला चूर्ण बन जाता है और अंकुरण क्षमता घट जाती है।

रोकथाम: कम से कम पांच वर्ष का फसलचक्र अपनाएं। रोगग्रस्त बालियों को नष्ट करें। साफ एवं स्वस्थ बीज का प्रयोग करें। बीटावैक्स, औरियोफंगिन, थीरम, जीनेब या ऑक्सीकार्बोक्सिन 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। फूल निकलने की अवस्था में प्रोपीकानाजोल (0.1 प्रतिशत), ट्रायडिमेफन (0.2 प्रतिशत), कार्बेण्डाजिम (0.1 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

पर्णीय (अंगमारी) झुलसा रोग

लक्षण: निचली पत्तियों पर छोटे, अंडाकार, भूरे धब्बे बनते हैं, जो मिलकर पत्ती का अधिकांश भाग ढक लेते हैं।

रोकथाम: थीरम या डाइथेन जेड-78 का 0.25 प्रतिशत छिड़काव करें।

चूर्णिल आसिता

लक्षण: पत्तियों पर भूरे-सफेद चूर्ण के धब्बे दिखाई देते हैं। उग्र अवस्था में तना प्रभावित होता है। दाने छोटे एवं सिकुड़े बनते हैं।

रोकथाम: सल्फर का बुरकाव 20 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से करें।

काला सिट्टा रोग

लक्षण: दानों का सिरा गहरा भूरा या काला हो जाता है।

रोकथाम: 800 ग्राम डाइथेन जेड-78 (जीनेब) या डाइथेन एम-45 (मैंकोजेब) को 250 लीटर पानी में घोलकर 10-15 दिनों के अंतर पर छिड़काव करें।

तेला कीट

लक्षण: हरा रंग का जूंतुमा कीट, जो ठंड एवं बादलों वाले दिनों में अधिक दिखाई देता है। पत्तियों एवं बालियों से रस चूसता है।

रोकथाम: 5 कीट प्रति बाली दिखाई देने पर 1.5 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एसएल या 1.5 मि.ली. डाइमेथोएट 30 ई.सी. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

चेंपा कीट

लक्षण: पत्तियों एवं बालियों से रस चूसते हैं।

रोकथाम: यदि 12 प्रतिशत बालियों या ऊपरी पत्तियों पर 10-12 कीट दिखाई दें, तो इमिडाक्लोप्रिड 20 एसएल (20 ग्राम सक्रिय तत्व) का छिड़काव खेत की चारों ओर 2 मीटर बार्डर पर करें। अधिक प्रकोप होने पर 15-20 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव करें।

माइट कीट

लक्षण: असिंचित फसल में अधिक

ग्रीष्मकालीन बाजरा

जलवायु एवं मृदा

बाजरे की खेती गर्म जलवायु तथा 50-60 सें.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस फसल के लिए 32-37 डिग्री सेल्सियस तापमान सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है। अच्छी जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा बाजरा उत्पादन के लिए अत्यंत उपयुक्त होती है।

किस्मों का चयन

बाजरे की संकर किस्में जैसे: टी.जी.-37, आर-8808, आर-9251, आईसीजीएस-1, आईसीजीएस-44, डीएच-86, एम-52, पीबी-172, पीबी-180, जीएचबी-526, जीएचबी-558, जीएचबी-183, प्रोएग्रो-9555 आदि उपयुक्त हैं। बाजरे की **संकुल** प्रजातियां जैसे: पूसा कम्पोजिट-383, राज-171 आदि भी उपयुक्त हैं। जायद बाजरे की उन्नत प्रजातियों में आईआईसीएमवी-221 एवं सीटीपी-8203 प्रमुख हैं।

बुआई

जायद बाजरे की बुआई का उपयुक्त समय मध्य फरवरी से जून-जुलाई तक है। बीज दर 5-7 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। बुआई 25 सें.मी. की पंक्ति दूरी पर करनी चाहिए तथा बीजों को 2 सें.मी. से अधिक गहराई पर नहीं बोना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर करना चाहिए। सामान्यत:-

- **सिंचित क्षेत्र:** 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर।
- **बारानी क्षेत्र:** 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर।

बुआई के समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा लगभग 3-4 सें.मी. गहराई पर देनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा अंकुरण के 4-5 सप्ताह बाद खेत में बिखेरकर हल्की गुड़ाई के साथ मृदा में मिला देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

उच्च उपज के लिए समय पर खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा उपज में 50 प्रतिशत तक कमी हो सकती है। बुआई के बाद 30 दिनों तक खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए।

- पहली निराई-गुड़ाई बुआई के 15 दिनों बाद तथा
- दूसरी निराई 30 दिनों बाद करनी चाहिए।

यदि फसल की बुआई मेड़ पर की गई हो, तो ट्रैक्टर एवं रिज मेकर की सहायता से भी खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। रासायनिक नियंत्रण हेतु एट्राजिन 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से बुआई के तुरंत बाद या 1-2 दिनों के भीतर छिड़काव करना प्रभावी रहता है। वैकल्पिक रूप से एट्राजिन 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव किया जा सकता है।

जल प्रबंधन

अच्छी उपज के लिए खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। विशेष रूप से फुटाव अवस्था, बालियां निकलने की अवस्था तथा दाना बनने की अवस्था में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन बाजरे में 8-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। सामान्यत: 9-10 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ सकती है।

प्रकोप। पत्तियां शिखर से पीली पड़ने लगती हैं।

रोकथाम: फॉस्फोमिडान 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

चूहा: इनकी रोकथाम हेतु जिंक फॉस्फाइडयुक्त चारा या एल्युमिनियम फॉस्फाइड की टिकिया का प्रयोग करें।

जौ

जल प्रबंधन

पछेती जौ की फसल में तीसरी एवं अंतिम सिंचाई दूधिया अवस्था में, बुआई के लगभग 95-100 दिनों बाद करें।

पौध संरक्षण: जौ में नेमाटोड के कारण माल्या रोग होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं: पौधों का बौना, पीला और सूखा दिखाई देना। बालियां ठीक से नहीं बनतीं और दानों का विकास भी अच्छा नहीं होता। रोगग्रस्त पौधों की जड़ें झाड़ीनुमा तथा अधिक फैलाव वाली हो जाती हैं, जिन पर कहीं-कहीं उभार दिखाई देते हैं।

जौ की उन्नत प्रजाति डीडब्ल्यूआरबी-160

नियंत्रण

- एक या दो वर्ष के लिए चना, तोरिया, सरसों, गाजर, धनिया और मेथी जैसी फसलों का फसलचक्र अपनाएं।
- जौ की रोगरोधी किस्में (जैसे डीडब्ल्यूआरबी-160) लगाएं।
- मई और जून में खेत की 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 जुताइयां करें।
- आक्रमण की आशंका होने पर एल्डीकार्ब 5 कि.ग्रा. या कार्बोफ्यूरॉन 30 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बुआई के समय खाद में मिलाकर डालें।

फसल कटाई: जौ की फसल पकने के तुरंत बाद काट लेनी चाहिए, ताकि फसल गिरने और दाने झड़ने से होने वाला नुकसान कम हो सके। जौ का दाना हवा से नमी आसानी से सोख लेता है, इसलिए इसे सूखे और सुरक्षित स्थान पर भंडारित करें, ताकि कीट प्रकोप न हो।

ग्रीष्मकालीन मक्का

जलवायु

ग्रीष्मकालीन मक्के के लिए तापमान लगभग 18-30 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। पकते समय गर्म तथा शुष्क वातावरण उपयुक्त होता है। पाला फसल की किसी भी अवस्था के लिए हानिकारक हो सकता है। असिंचित मक्के की खेती के लिए वार्षिक वर्षा 25 से 50 सें.मी. तक पर्याप्त होती है।

जायद मक्का की उन्नत प्रजाति

मृदा का चयन

अधिकतम बढ़वार और पैदावार के लिए उपजाऊ दोमट मृदा, जिसमें वायु संचार अच्छा हो, जल निकास उत्तम हो तथा पर्याप्त जीवांश पदार्थ पाया जाता हो, सर्वोत्तम होती है। मक्के की खेती ऐसी मृदा में करनी चाहिए जिसका पी-एच मान 6.0-7.0 के बीच हो। जलभराव मक्के की फसल के लिए अत्यंत हानिकारक है।

बुआई

फरवरी के अंत से मध्य मार्च तक बुआई कर लेनी चाहिए। सामान्य मक्का के लिए 18-20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तथा संकर मक्का के लिए 12-15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज दर उपयुक्त होती है। मक्का की बुआई हल के पीछे 3-4 सें.मी. की गहराई पर करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सें.मी. रखें।

बुआई से पूर्व मक्के के बीज को 2.5 ग्राम थीरम या कार्बेण्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करना आवश्यक है।

किस्मों का चयन

जायद ऋतु में शीघ्र पकने वाली प्रजातियां लगानी चाहिए, जैसे: पी.एम.एच.-7, पी.एम.एच.-8, पी.एम.एच.-10, कंचन, गौरव, सूर्य, तरुण, नवीन, अमर, आजाद, उत्तम, किसान, विजय तथा श्वेता। हरे भुट्टे के लिए पी.ई.एम.एच.-2 एवं पी.ई.एम.एच.-3 उपयुक्त हैं। बेबीकॉर्न के लिए पूसा संकर-1, पूसा संकर-2, पूसा संकर-3, एच.एम.-4, वी.एल.-42, वी.एल.-78 तथा प्रकाश प्रमुख प्रजातियां हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर करना चाहिए। सामान्यत: 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर देना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय दें। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा को दो बार में टॉप ड्रेसिंग के रूप में 25-30 दिनों बाद तथा फूल आने के समय देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

मक्का की फसल में कम से कम दो निराई-गुड़ाई करनी चाहिए: पहली बुआई के 15-20 दिनों बाद तथा दूसरी 30-35 दिनों बाद। रासायनिक नियंत्रण के लिए बुआई के 2-3 दिनों के भीतर एट्राजीन 2.5 कि.ग्रा. या पेन्डीमेथिलिन 3.33 लीटर में से किसी एक खरपतवारनाशी को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

चना

कीट प्रबंधन

चना फलीछेदक (हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा) चने की फसल का प्रमुख बहुभक्षी कीट है। इसकी प्रारंभिक अवस्था की सुंडियां कोमल पत्तियों को खुरचकर खाती हैं। यह सूंडी 5-6 बार केंचुल उतारकर धीरे-धीरे बड़ी होती जाती है। तीसरी अवस्था में यह फलियों में छेदकर दाना खाती है, जिससे फलियों में गोल छेद बन जाते हैं। एक सूंडी अपने जीवनकाल में लगभग 30-35 दाने नष्ट कर सकती है।

इसके नियंत्रण के लिए इन्डोक्साकार्ब 0.02 प्रतिशत घोल (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) या साइपरमेथ्रिन (25 ई.सी.) 125 मि.ली. या कार्बेरिल (50 डब्ल्यू.पी.) 1 कि.ग्रा. या मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 750 मि.ली. या क्विनालफॉस (25 ई.सी.) 1.5 लीटर या डाइमिथोएट (30 ई.सी.) 400 मि.ली. को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त एन.पी.वी. (न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस)

चने की उन्नत प्रजाति

250-350 शिशु समतुल्य को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव किया जा सकता है। चने में 5 प्रतिशत एन.एस.के.ई. या 3 प्रतिशत नीम के तेल का प्रयोग भी उपयोगी रहता है।

कटाई एवं मड़ाई

चने की फसल की कटाई जलवायु, तापमान, आर्द्रता तथा दानों की नमी पर निर्भर करती है। सामान्यत: जब पत्तियां झड़ने लगें, फलियां भूरे या हल्के पीले रंग की हो जाएं तथा दाने सख्त होकर खड़खड़ की आवाज देने लगें और दानों में लगभग 15 प्रतिशत नमी हो, तब कटाई करनी चाहिए।

कटाई हंसिया या शक्तिचालित यंत्रों से की जा सकती है। अधिक पकने पर फलियां टूटकर गिरने लगती हैं, जिससे उत्पादन प्रभावित होता है। काटी गई फसल को खलिहान में 4-5 दिनों तक धूप में सुखाकर मड़ाई करें। मड़ाई हाथ से, बैलों द्वारा, थ्रेसर या कंबाइन से की जा सकती है। भंडारण से पहले दानों को सुखाकर नमी 10-12 प्रतिशत तक कर लेनी चाहिए।

खेसारी

कटाई व मड़ाई

खेसारी (लथाइरस सैटाइवस) की फसल हल्की पीली पड़ने पर कटाई कर लें। अधिक पक जाने पर फलियां चटकने लगती हैं। फसल की कटाई हंसिए से की जाती है। कटाई के बाद गहाई कर दानों को अच्छी तरह सुखाकर (8-10 प्रतिशत नमी पर) भंडारण करें, जिससे घुन का प्रकोप नहीं होता है। साथ ही भंडारगृह में घुन नियंत्रण का उपचार अवश्य करें।

खेसारी

मूंग

बुआई

ग्रीष्मकालीन/बसंत मूंग की बुआई का उपयुक्त समय 10 मार्च से 10 अप्रैल तक तथा उड़द की बुआई का उपयुक्त समय 15 फरवरी से 15 मार्च तक है। यदि किसी कारणवश खेत समय पर तैयार न हो सके, तो मूंग एवं उड़द की 60-65 दिनों में पकने वाली प्रजातियों की बुआई 15 अप्रैल के बाद भी की जा सकती है।

मूंग

किस्मों का चयन

अधिक पैदावार एवं उत्तम गुणवत्ता के लिए उपयुक्त प्रजाति का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। पानी की उपलब्धता, फसलचक्र एवं बाजार की मांग को ध्यान में रखकर प्रजातियों का चयन करें। मूंग की प्रमुख उन्नत प्रजातियां हैं-पूसा 1431, पूसा 9531, पूसा रतना, पूसा 672, पूसा विशाल, के.पी.एम. 409-4 (हीरा), वसुधा (आई.पी.एम. 312-20), सूर्य (आई.पी.एम. 512-1), कनिका (आई.पी.एम. 302-2)।

ग्रीष्मकालीन गन्ना

बुआई

गन्ने की बुआई 15-20 मार्च तक पूरी कर लेनी चाहिए। तीन आंख वाले गन्ने के टुकड़ों को 5 मिनट तक 250 ग्राम एरिटॉन को 100 लीटर पानी के घोल में उपचारित करें। गन्ने की बुआई 75-90 सें.मी. दूरी पर बनी कूड़ों में लगभग 10 सें.मी. गहराई पर करें।

गन्ने की बुआई के लिए एक आंख वाले टुकड़े लगभग 1,33,750, दो आंख वाले टुकड़े 60,000-65,000 तथा तीन आंख वाले टुकड़े 40,000-45,000 पर्याप्त होते हैं। बीज की मात्रा लगभग 60-70 क्विंटल प्रति हैक्टर पर्याप्त रहती है।

किस्मों का चयन

पश्चिमी तथा मध्य क्षेत्रों के लिए शीघ्र पकने वाली उन्नत प्रजातियां जैसे-सीओ-98014 (करन-1), सीओ-0118 (करन-2), सीओ-0238 (करन-4), सीओ-0214 (करन-5), सीओ-0237 (करन-8) आदि उपयुक्त हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए को.शा. 8436 एवं को.शा. 687 प्रमुख हैं। पश्चिमी एवं मध्य उत्तर प्रदेश के लिए मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियां जैसे सी.ओ.एच.-110, सी.ओ.एस.-767, सी.ओ.एच.-1148, सी.ओ.एच.-199, सी.ओ.एच.-99 उपयुक्त हैं।

अंत:सस्यन

बसंतकालीन गन्ने के साथ अन्तर्वर्ती खेती करना लाभदायक रहता है। 75 सें.मी. दूरी पर बोई गई गन्ने की दो पंक्तियों के बीच उड़द की दो पंक्तियां आसानी से ली जा सकती हैं। ऐसा करने पर उड़द के लिए अतिरिक्त उर्वरक की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पोषक तत्व प्रबंधन

गन्ने की फसल में मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। यदि मृदा परीक्षण उपलब्ध न हो, तो बुआई के समय प्रति हैक्टर 60-75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग करें। गन्ने की पेड़ी फसल में प्रति हैक्टर 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन गन्ना काटने के बाद तथा इतनी ही मात्रा तीसरी सिंचाई के समय दें।

पौध संरक्षण

गन्ने की फसल उगते समय दीमक पोरी की आंखों को नष्ट कर देती है तथा कनसुए के आक्रमण से पौधों की गोभ सूख जाती है। इन कीटों के नियंत्रण के लिए बुआई के समय 2.5 लीटर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 600 मि.ली. प्रोफिनिल 5 एस.सी. को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ कूड़ों में बीज के ऊपर छिड़काव करें। 150-200 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है।

मसूर में कटाई व मड़ाई

जब फलियां पक जाएं (लगभग 70-80 प्रतिशत फलियां सूखने की अवस्था में आ जाएं), तब फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई के बाद फसल को खेत में अच्छी तरह सुखाकर दाने अलग कर लें। पकने के बाद फसल को अधिक समय तक खेत में खड़ी न रहने दें, क्योंकि देर से कटाई करने पर फलियों से दाने झड़ने (छिटकने) के कारण उपज की हानि होती है।

मटर

कटाई व मड़ाई

मार्च में हरी मटर कम होने के साथ-साथ दानें वाली मटर की फसल तैयार हो जाती है, अगर मटर की फलियां सूखकर पीली पड़ जाएं, तो उनकी कटाई कर लेनी चाहिए। समय से कटाई बीजों को बिखराव से बचाती है। मटर की फसल पूरी तरह से पक जाने और धूप में पर्याप्त सुखाने के बाद ही मड़ाई करें। गहाई करने के बाद मटर के दानों को इतना सुखाएं कि सिर्फ 8 फीसदी नमी ही बचे। मटर की फसल प्राय: 100-120 क्विंटल प्रति हैक्टर (हरी फलियां) एवं 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टर दानों की पैदावार प्राप्त हो जाती है।

मृदा का चयन व तैयारी

मूंग एवं उड़द की खेती के लिए अच्छे जल-निकास वाली बलुई-दोमट मृदा उपयुक्त मानी जाती है। बुआई से पूर्व खेत में पर्याप्त नमी का होना अत्यंत आवश्यक है। बारीक, भुरभुरी एवं अच्छी तरह चूर्णिल भूमि इन फसलों के लिए उपयुक्त रहती है। खेत की 2-3 बार जुताई/हैरोइंग पर्याप्त होती है। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं, जिससे भूमि की नमी संरक्षित रहे। बुआई का उपयुक्त समय वायुमंडलीय तापमान, मृदा की नमी एवं फसल प्रणाली पर निर्भर करता है।

उड़द की प्रमुख उन्नत प्रजातियां हैं: पीडीयू 1 (बसंत बहार), के.यू.जी. 479, मुलुंद्र उड़द 2 (के.पी.यू. 405), कोटा उड़द 4 (के.पी.यू. 12-1735) एवं सुजाता।

बीजोपचार

अच्छे अंकुरण एवं स्वस्थ पौध संख्या सुनिश्चित करने हेतु प्रति कि.ग्रा. बीज को 2.5 ग्राम थीरम तथा 1 ग्राम कार्बेण्डाजिम से उपचारित करें। इसके बाद राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार करें। इसके साथ ही फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पीएसबी) से बीज शोधन लाभकारी रहता है।

बीज दर व दूरी

ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. तथा बीज की गहराई 4-5 सें.मी. रखें। बुआई कूड़ों में या सीडड्रिल द्वारा पंक्तियों में करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

मूंग के लिए 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 45-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20-25 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हैक्टर बुआई के समय कूड़ों में दें।

उड़द

उड़द के लिए 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 45 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हैक्टर बुआई के समय दें। फली बनने की अवस्था में 2 प्रतिशत यूरिया घोल का पर्णीय छिड़काव करने से उपज में वृद्धि होती है।

खरपतवार प्रबंधन

बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद (लगभग 15-20 दिनों पर) निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ मृदा में वायु संचार बढ़ता है, जिससे मूल ग्रंथियों में सक्रिय जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं। रासायनिक नियंत्रण हेतु एलाक्लोर 4 लीटर या फ्लूक्लोरालिन (45 ई.सी.) 2.22 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरंत बाद अथवा अंकुरण से पूर्व छिड़काव करें।

ग्रीष्मकालीन अरहर

बुआई

सिंचित अवस्था में अरहर की टी-21 एवं यू.पी.ए.एस. 120 किस्मों की बुआई मार्च में की जा सकती है। इसके लिए अच्छे जल-निकास वाली दोमट से हल्की दोमट मृदा उपयुक्त रहती है। खेत की दोहरी जुताई कर खरपतवार निकाल दें तथा लगभग 1/3 बोरी यूरिया एवं 2 बोरी सिंगल सुपर फॉस्फेट डालकर सुहागा चला दें। अरहर का 6-7 कि.ग्रा. स्वस्थ बीज लेकर राइजोबियम जैव

अरहर

उर्वरक से उपचारित करें तथा 16 इंच की दूरी पर पंक्तियों में बुआई करें। यदि अरहर की दो पंक्तियों के बीच वैसाखी मूंग लगानी हो, तो पंक्ति की दूरी 20 इंच कर लें। बुआई के 25 एवं 45 दिनों बाद खरपतवार नियंत्रण हेतु निराई-गुड़ाई करें। आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई की जा सकती है।

अलसी

कटाई

अलसी की फसल लगभग 120 दिनों में कटाई हेतु तैयार हो जाती है। कटाई उस समय करें, जब पौधे सुनहरे पीले रंग के हो जाएं तथा दाने भूरे रंग के होकर सूखने और खुलने लगें। कटाई के बाद पौधों को एक स्थान पर एकत्र कर बीज झाड़कर अलग कर लें।

रेटिंग: बीज अलग करने के बाद पौधों से रेशा निकालने की प्रक्रिया को रेटिंग कहते

अलसी

हैं। इसके लिए शाखाओं को हटाकर मुख्य तने को अलग कर लें तथा अलग किए गए भागों के बंडल बना लें। इन बंडलों को 2-3 दिनों तक पानी में सड़ने (भिगोने) के लिए रखें। इसके बाद निकालकर साफ पानी से धो लें एवं अच्छी तरह सुखा दें। सूखने के पश्चात मुगरी से पिटाई कर रेशे अलग कर लें।

ग्रीष्मकालीन मूंगफली

मृदा का चयन

मूंगफली की खेती के लिए अच्छी जल धारण क्षमता वाली बलुई, बलुई दोमट, दोमट तथा काली मृदा उपयुक्त रहती है। हालांकि बलुई दोमट मृदा, जिसका पी-एच मान 5.5-7.0 के बीच हो, मूंगफली के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होना आवश्यक है।

बुआई

जायद में मूंगफली की बुआई मार्च से अप्रैल तक की जा सकती है, जिससे फसल अच्छी पैदावार देती है। इसके लिए बुआई पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25-30 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 8-10 सें.मी. रखें। जायद फसल के लिए 95-100 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई से पूर्व बीज को 2 ग्राम थीरम तथा 1 ग्राम 50 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम (कुल 3 ग्राम मिश्रण) प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इस उपचार के 5-6 घंटे बाद बुआई से पहले बीज को राइजोबियम मिश्रण से भी उपचारित कर लें।

किस्मों का चयन

मूंगफली की प्रमुख उन्नत प्रजातियां हैं-टी.जी. 37ए, आर-8808, एस.बी.-11, आई.सी.जी.एस.-1, आई.सी.जी.एस.-44, प्रताप राज मूंगफली, आई.सी.जी.एस.-11, आई.सी.जी.एस.-37, जवाहर मूंगफली 23 (जे.जी.एन.-23), जे.एल.-501, विकास, डी. एच.-86, आर-9251 तथा टी.-64 आदि।

मूंगफली

खरपतवार प्रबंधन

मूंगफली की खेती में निराई-गुड़ाई का विशेष महत्व है। 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार निराई-गुड़ाई करना लाभदायक रहता है। गुच्छेदार प्रजातियों में मृदा चढ़ाना भी लाभकारी पाया गया है। ध्यान रखें कि जब पौधों में फलियों का निर्माण प्रारंभ हो जाए, तब निराई-गुड़ाई या मृदा चढ़ाने की क्रिया नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे विकसित होती फलियों को क्षति पहुंच सकती है।

चारा फसलें

बरसीम

इसमें 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई एवं कटाई करते रहें। जई की फसल में लगभग 50 प्रतिशत फूल आने पर अंतिम कटाई करें।

ज्वार

उन्नत किस्में-एसएसजी 59-3, जवाहर चारी 6, जवाहर चारी 69, पूसा चारी 6, एचसी 136, यूपी चारी 1 (आईएस 4776), जीएफएस 3 आदि। ये लगभग 1500-2000 क्विंटल हरा चारा देती हैं। इनकी बुआई के लिए लगभग 17 कि.ग्रा. बीज को 25 सें.मी. (लगभग 10 इंच) दूरी पर कतारों में बोएं।

बाजरा

उन्नत किस्में-एफबीसी 16, जीएफबी 1, जायंट बाजरा, राज बाजरा चारी-2, पीसीबी-164, अविका बाजरा चारी (एवीकेबी-19), नरेंद्र चारा बाजरा-2 (एनडीएफबी-2) आदि। बुआई हेतु 3-4 कि.ग्रा. बीज को 30 सें.मी. (लगभग 12 इंच) दूरी पर कतारों में बोएं। इससे लगभग 70-77 दिनों में 160 क्विंटल हरा चारा प्राप्त हो जाता है।

दोनों फसलों में बुआई के समय 1 बोरी यूरिया दें तथा एक माह बाद आधी बोरी यूरिया पुनः डालें। रेतीली मृदा में बुआई के समय 1 बोरी सिंगल सुपर फॉस्फेट भी दें।

मक्का

प्रमुख किस्में-अफ्रीकन टॉल, जे-1006, एपीएफएम 8, विजय, किसान तथा देसी टाइप-41। संकर मक्का की किस्में जैसे-गंगा-2 एवं गंगा-7 भी चारे के लिए उपयुक्त हैं। बुआई के लिए 50-60 कि.ग्रा.

मक्का

राई-सरसों

कटाई व मड़ाई

जब सरसों के पत्ते झड़ने लगे, फलियां पीली पड़ने लगे तथा लगभग 75 प्रतिशत फलियां सुनहरे रंग की हो जाएं, तब फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई में देरी होने पर दाने झड़ने की आशंका रहती है। कटाई के बाद फसल को छोटे-छोटे बंडलों में बांधकर खेत में सुखाने हेतु छोड़ दें। कटाई की हुई सरसों को खलिहान में अधिक समय तक न रखें, अन्यथा पेंटेड बग कीट दानों का तेल चूस सकता है, जिससे हानि होती है। यदि किसी कारणवश फसल को खलिहान में रखना आवश्यक हो, तो खलिहान की भूमि पर मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत पाउडर का पूर्व में छिड़काव कर दें। पौधे पूर्णतः सूख जाने पर बैलों या ट्रैक्टर से मड़ाई कर दाने अलग कर लें। दानों को अच्छी तरह सुखाकर ही भंडारण करें।

उपज

उन्नत किस्म के बीज, उचित सस्य क्रियाएं एवं समुचित पौध संरक्षण अपनाने पर तोरिया की उपज 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टर तथा राया एवं सरसों की उपज 22-25 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है।

बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। इसे फलीदार चारा (जैसे लोबिया) के साथ 2:1 अनुपात में बोना लाभकारी रहता है।

लोबिया

उन्नत किस्में-कोहिनूर (एस-450), एचएफसी 42-1 (हरा लोबिया), चारा लोबिया 1, 2, 3, 4, जीएफसी 1, जीएफसी 2, जीएफसी 3, जीएफसी 4, यूपीसी 5286, यूपीसी 5287, यूपीसी 4200, गुजरात लोबिया 3, लोबिया 88, बुंदेल लोबिया 1 (आईएफसी 8401), बुंदेल लोबिया 2 (आईएफसी 8503), सी-20, सी-30-558, एन.पी.-3, एफ.ओ.एस. 1, सी.एस. 88, रशियन जायंट आदि।

लोबिया

बीज उपचार

बीजों को 2.5 ग्राम थीरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। पृथक बुआई के लिए 40 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है, जबकि ज्वार या मक्का के साथ मिश्रित बुआई में 15-20 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त है। इसका चारा अत्यंत पौष्टिक होता है, जिसमें लगभग 17-18 प्रतिशत प्रोटीन के साथ कैल्शियम एवं फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

भूमि तैयारी हेतु एक जुताई मृदा पलटने वाले हल से तथा 2-3 जुताई कल्टीवेटर या देसी हल से करें। बुआई के समय 25-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 15-20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर दें।

संकर हाथी घास (नेपियर-बाजरा संकर-21)

यह किस्म वर्षभर हरा चारा प्रदान करती है। इसे जड़ों या तनों के टुकड़ों से लगाया जाता है। लगभग 20 इंच लंबे 2-3 गांठ वाले लगभग 11,000 टुकड़े प्रति एकड़ लगते हैं। पंक्ति से पंक्ति की दूरी लगभग 75 सें.मी. (30 इंच) तथा पौधे से पौधे की दूरी 60 सें.मी. (24 इंच) रखें। रोपाई से पहले खेत में लगभग 20 गाड़ी सड़ी गोबर की खाद दें तथा प्रत्येक कटाई के बाद 1 बोरी यूरिया डालें। गर्मियों में 10-17 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें।

संकर एवं संकुल किस्मों में 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा देसी प्रजातियों में 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के साथ 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। इसके अनुसार एन.पी.के. (12:32:16) देसी प्रजातियों में लगभग 100 कि.ग्रा. तथा संकर/संकुल प्रजातियों में लगभग 190 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दिया जा सकता है। यूरिया देसी प्रजातियों में लगभग 150 कि.ग्रा. तथा संकर/संकुल प्रजातियों में लगभग 215 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से दो भागों में दें।

शुद्ध चारे की फसल के लिए 50-60 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर तथा लोबिया के साथ 3:1 अनुपात में बुआई की जा सकती है।

सब्जी फसलें

लोबिया

ग्रीष्मकालीन लोबिया के लिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु उपयुक्त होती है। 24-27 डिग्री

सूरजमुखी

भूमि का चयन

सूरजमुखी की खेती उन भूमि क्षेत्रों में भी की जा सकती है, जहां धान की खेती संभव नहीं होती। उतार-चढ़ाव वाली, कम जल-धारण क्षमता वाली तथा अपेक्षाकृत कमजोर मृदा में भी यह फसल सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। हालांकि हल्की भूमि, जिसमें जल-निकास अच्छा हो, इसकी खेती के लिए अधिक उपयुक्त रहती है।

किस्मों का चयन

सूरजमुखी की उन्नत संकर किस्में जैसे-बी.एस.एच.-1, एल.एस.एच.-1, एल.एस.एच.-3, के.वी.एस.एच.-1, के.वी.एस.एच.-41, के.वी.एस.एच.-42, के.वी.एस.एच.-44, के.वी.एस.एच.-53, के.वी.एस.एच.-78, डी.आर.एस.एच.-1 आदि। **संकुल** किस्में जैसे-ई.सी.-68415, सह.-1, सह.-4, सी.ओ.-2, सी.ओ.-3, सी.ओ.-5, एस.एस.-56, गौसुफ-15, पी.के.वी.एस.एफ.-9, रास-11, डी.आर.एस.एफ.-113, कांथी, भानु, एस.एस.-0808, डी.आर.एस.एफ.-108, के.-5, टी.ए.एस.एफ.-82, एल.एस.एफ.-8, फुले रविराज, सूर्य एवं मॉडर्न आदि उपयुक्त हैं।

बुआई

सूरजमुखी की बुआई 15 मार्च तक पूरी कर लेनी चाहिए। **संकर** प्रजाति के लिए 5-6 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर तथा **संकुल** प्रजाति के लिए 12-15 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई से पहले बीज को कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम या थीरम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

सामान्यत: उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। मृदा परीक्षण उपलब्ध न होने पर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश तथा 200 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय कूड़ों में दें। बुआई के 15-20 दिनों बाद अतिरिक्त पौधों को निकालकर पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. कर लें और उसके बाद सिंचाई करें।

अंत:सस्यन (इंटरक्रॉपिंग)

सूरजमुखी एवं उड़द की अंतर्वर्ती खेती के लिए सूरजमुखी की दो पंक्तियों के बीच उड़द की 2-3 पंक्तियां लेना उपयुक्त रहता है।

पौध संरक्षण

यदि कटुवा सुंडी या हरी सुंडी का प्रकोप हो, तो साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. 50 मि.ली. या डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. 150 मि.ली. या फेनवालरेट 20 ई.सी. 80 मि.ली. को 100-150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। माहूं कीट के नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरीफॉस 25 ई.सी. 1.0 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 600-800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। वैकल्पिक रूप से मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. 400 मि.ली. या रोगोर 30 ई.सी. 400 मि.ली. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव किया जा सकता है।

लोबिया

सेल्सियस तापमान इसकी वृद्धि के लिए अच्छा रहता है। 5.5-6.5 पी-एच मान वाली, अच्छे जल-निकास वाली भूमि उपयुक्त है। प्रमुख उन्नत प्रजातियां-पूसा कोमल (बैक्टीरियल ब्लाइट प्रतिरोधी), पूसा सुकोमल (मोजैक वायरस प्रतिरोधी), अर्का गरिमा, काशी गौरी, काशी कंचन, काशी उन्नति, काशी निधि तथा लोबिया-263 आदि हैं।

भिण्डी

ग्रीष्मकालीन भिण्डी की बुआई 20 फरवरी से 15 मार्च तक करना उपयुक्त रहता है। ग्रीष्मकालीन खेती हेतु उन्नत प्रजातियां-पूसा ए-5, पूसा सावनी, पूसा मखमली, बी.आर.ओ.-3, बी.आर.ओ.-4, उत्कल गौरव तथा वायरस-प्रतिरोधी किस्में जैसे पूसा ए-4, परभणी क्रांति, पंजाब-7, पंजाब-8, आजाद क्रांति, हिसार उन्नत, वर्षा उपहार और अर्का अनामिका प्रमुख हैं। बीज दर लगभग 20-22 कि.ग्रा./हैक्टर रखें। बीज की बुआई सीडड्रिल या हल की सहायता से 45×20 सें.मी. दूरी पर लगभग 4-5 सें.मी. गहराई में करें। बुआई से पहले 20-25 टन गोबर या कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टर मृदा में मिला दें। उर्वरक के रूप में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (आधी मात्रा), 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर अंतिम जुताई के समय दें तथा शेष नाइट्रोजन फूल आने की अवस्था में दें।

मिर्च

मिर्च की खेती के लिए 15-35 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है। 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान पर फूल एवं फल गिरने लगते हैं। अच्छे जल निकास वाली, कार्बनिक पदार्थों से युक्त बलुई-दोमट मृदा (पी-एच 6.0-7.5) सर्वोत्तम रहती है। प्रमुख उन्नत प्रजातियां-पूसा सदाबहार, पूसा ज्वाला, अर्का लोहित, अर्का सुफल, अर्का श्वेता, अर्का हरिता, मथानिया लोंग, पंत सी-1 आदि हैं। गर्मी की फसल के लिए फरवरी-मार्च में पौधशाला में बीज बोएं। एक हैक्टर पौध तैयार करने के लिए संकर किस्मों हेतु लगभग 250 ग्राम तथा अन्य किस्मों हेतु 1.0-1.5 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। नर्सरी के लिए 1 मीटर चौड़ी, 3 मीटर लंबी तथा 10-15 सें.मी. ऊंची क्यारियां बनाएं। बीजों को 2 ग्राम बाविस्टिन या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। रोपाई 4-5 सप्ताह बाद करें तथा 60×30-45 सें.मी. दूरी रखें। जायद मिर्च में 70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 50-60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर अंतिम जुताई के समय दें। शेष नाइट्रोजन को 30 और 45 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें और सिंचाई करें। विषाणुजनित रोग एवं कीट नियंत्रण के लिए मैलाथियॉन 50 ई.सी. 400 मि.ली. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 10-15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

बुआई फरवरी-मार्च में करें। इसके लिए 12-20 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45-60 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखें। 20-25 टन गोबर या कम्पोस्ट खाद बुआई से लगभग एक माह पहले खेत में डालें। उर्वरक के रूप में 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर अंतिम जुताई के समय दें तथा 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन फूल आने पर दें।

कद्दूवर्गीय सब्जियां

जलवायु

ये फसलें अत्यधिक गर्मी सहन नहीं कर सकतीं, इसलिए इन्हें जायद ऋतु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसकी खेती अधिकतम 40 डिग्री सेल्सियस तथा न्यूनतम 20 डिग्री सेल्सियस तापमान के बीच की जा सकती है। इस वर्ग की सब्जियां सूर्य की रोशनी और तापमान के उतार-चढ़ाव से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। रोशनी व गर्मी की अधिकता तथा लंबे प्रकाश काल में मादा फूलों की अपेक्षा नर फूल अधिक बनते हैं, जिससे पैदावार कम हो जाती है। इनके लिए 25-30 डिग्री सेल्सियस तापमान सबसे उपयुक्त होता है।

मृदा की तैयारी

इस वर्ग की सब्जियों के लिए दोमट या बलुई दोमट मृदा सबसे उपयुक्त मानी जाती है। इसके लिए अधिक जैविक पदार्थ वाली तथा अच्छे जल निकास वाली मृदा की आवश्यकता होती है। मृदा का पी-एच मान 6-7 के बीच होना चाहिए। खेत की पहली जुताई मृदा पलटने वाले हल से करनी चाहिए तथा इसके बाद 2-3 जुताई कर सकते हैं। खेत में पाटा लगाकर मृदा को भुरभुरा और खेत को समतल बना लेना चाहिए। बीज की बुआई के लिए आवश्यकतानुसार नालियां बना लें। जायद ऋतु में उगाने के लिए कद्दूवर्गीय फसलों की बुआई जनवरी से मार्च तक की जा सकती है, जबकि बीजों की सीधे खेत में बुआई फरवरी-मार्च में की जाती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

खाद व उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के अनुसार करना चाहिए। कम्पोस्ट या सड़ी गोबर की खाद 200 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से बीज की बुआई के लगभग एक माह पहले खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह खेत में मिला दें।

फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी या एक-तिहाई मात्रा आपस में मिलाकर बोने वाली नालियों में डालकर मृदा में मिला दें। शेष नाइट्रोजन की मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर बुआई के लगभग एक माह बाद नालियों में टॉप ड्रेसिंग करें तथा गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ाएं। दूसरी मात्रा पौधों की बढ़वार के समय, लगभग 45-50 दिनों बाद फूल निकलने से पहले टॉप ड्रेसिंग करें। 5 ग्राम यूरिया प्रति लीटर

सारणी: विभिन्न कद्दूवर्गीय किस्मों का चयन एवं बुआई की विधि

फसल	संकर एवं उन्नत प्रजातियां	बीज दर (कि.ग्रा./हैक्टर)	पंक्ति से पंक्ति दूरी (सें.मी.)	पौध से पौध दूरी (सें.मी.)	बीज की गहराई (सें.मी.)
लौकी	पूसा हाइब्रिड-2, पूसा हाइब्रिड-3, पूसा मेघदूत, पूसा मंजरी, पंत संकर लौकी-4, पूसा नवीन, पूसा समृद्धि, पूसा संतुष्टि, पूसा संदेश, पंजाब कोमल, पंजाब राउंड, आजाद, नूतन, राजेन्द्र, काशी गंगा, काशी बहार, नरेंद्र रश्मि तथा अर्का बहार	3.0-6.0	200-300	100-150	2.5
चप्पन कद्दू	पूसा अलंकार, पूसा पसंद, पैटी पैन, अर्ली येलो, प्रोलिफिक, ऑस्ट्रेलियन ग्रीन, पंजाब चप्पन कद्दू नं.-1	6.0-7.0	90-120	45-75	1.5-2.0
काशीफल (कद्दू वर्ग)	पूसा संकर-1, पूसा विश्वास, पूसा विकास, काशी हरित, अर्का चंदन, सोलन बादामी, नरेंद्र अमृत	7.0-9.0	250-300	150-180	2.0-2.5
कद्दू	पूसा हाइब्रिड-1, पूसा विकास, पूसा विश्वास, अर्का चंदन, काशी हरित	2.5	60	45	2.5
खीरा	पूसा संयोग, पूसा उदय, पूसा बरखा, पंत खीरा-1, जापानीज लॉन्ग ग्रीन, प्वाइंसेट, स्वर्ण श्वेता, स्वर्ण अगेती, पंजाब-1	2.5-3.5	150	60-70	1.0
खरबूजा	पूसा रसराज, पूसा मधुरस, पूसा सरदा, पूसा शरबती, पूसा मधुरिमा, पंजाब संकर-1, एम-9, वाई-5, हरा मधु, पंजाब सुनहरी, दुर्गापुरा मधु, लखनऊ सफेदा, काशी मधु, अर्का जीत, अर्का राजहंस	4.0-6.0	150-200	60-90	1.0
तरबूज	अर्का ज्योति, अर्का आकाश, अर्का ऐश्वर्य, अर्का मुथु, शुगर बेबी, अर्का मानिक, असाही यामातो, स्पेशल-1, उन्नत शिपर, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा लाल	3.5-5.0	250-350	60-120	2.0-4.0
चिकनी तोरई	पूसा सुप्रिया, पूसा चिकनी, पूसा स्नेहा, काशी दिव्या, स्वर्ण प्रभा, कल्याणपुर हरी चिकनी, पंत चिकनी तोरई-1, राजेंद्र नेनुआ-1	2.5-3.5	180-250	60-120	1.5-2.0
धारीदार तोरई	पूसा नसदार, पूसा नूतन, स्वर्ण मंजरी, पंजाब सदाबहार, अर्का सुजात, अर्का सुमीत, सतपुतिया	3.5-5.0	180-250	60-120	2.0-2.5
करेला	पूसा संकर-1, पूसा रसदार, पूसा पूर्वी, पूसा औषधि, पूसा हाइब्रिड-2, पूसा विशेष, पूसा दोमौसमी, अर्का हरित, कल्याणपुर सोना, कल्याणपुर बारहमासी, पंजाब-14, पंत करेला-1, एन.डी.वी.-1, सोलन ग्रीन, सोलन सफेद, काशी उर्वशी	4.5-6.0	150-200	60-110	2.0-2.5
टिंडा	पूसा रौनक, पंजाब टिंडा, अर्का टिंडा, हिसार सिलेक्शन-1, बीकानेरी ग्रीन, लुधियाना स्पेशल (5-48)	5.0-6.0	150-200	30-45	2.0
पेठा	पूसा उज्ज्वल, पूसा शक्ति, पूसा श्रेयाली, पूसा उर्मी, काशी धवल, काशी उज्ज्वल, काशी सुरभि, सी.ओ.-1, सी.ओ.-2	5.0-6.0	180-250	60-120	2.0

पानी में घोलकर पत्तियों पर छिड़काव करना भी अत्यंत लाभदायक होता है।

खरपतवार नियंत्रण

फसल में समय-समय पर निराई-गुड़ाई करके खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। यदि खरपतवार नियंत्रण संतोषजनक न हो पा रहा हो, तो स्टॉम्प (पेण्डीमेथिलिन) 3.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से लगभग 1000 लीटर पानी में घोलकर बुआई के 48 घंटे के भीतर मृदा की सतह पर छिड़काव करें।

जल प्रबंधन

मृदा में नमी की कमी होने पर सिंचाई करनी चाहिए। सामान्यत: कद्दूवर्गीय सब्जियों में 5-7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई उपयुक्त रहती है। सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई नालियों में ही करें, जिससे पौधों की जड़ों को क्षति न पहुंचे और जल निकास सुचारु बना रहे।

टमाटर

जलवायु

टमाटर की अच्छी पैदावार के लिए तापमान का महत्वपूर्ण योगदान होता है। 18-27 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। फल लगने के लिए रात का आदर्श तापमान 15-20 डिग्री सेल्सियस के बीच होना चाहिए। फलों के लाल रंग के निर्माण के लिए 21-24 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है।

मृदा

पोषक तत्वों से युक्त दोमट मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। मृदा में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए मृदा का पी-एच मान 6-7.5 के मध्य होना चाहिए।

आलू

आलू के खेतों का नियमित निरीक्षण करें। मार्च तक अधिकांश आलू की फसल तैयार हो जाती है। यदि आलू भी तैयार हो चुके हों, तो उनकी खुदाई का कार्य पूरा कर लें। खेती में आलू निकालने के बाद खेत को आगामी फसल के लिए तैयार करें।

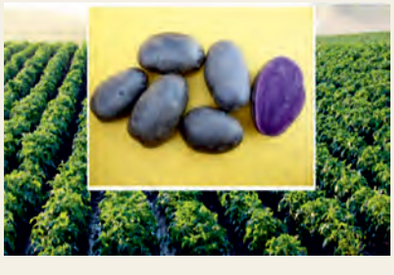

सारणी: विभिन्न कद्दूवर्गीय फसलों के लिए संस्तुत पोषक तत्वों की मात्रा

फसल	नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हैक्टर)	फॉस्फोरस (कि.ग्रा./हैक्टर)	पोटाश (कि.ग्रा./हैक्टर)
तोरई	80	50	50
करेला	50	25-30	25-30
चप्पन कद्दू	80	50	50
कद्दू	60	60	50
खरबूजा	90	70	60
तरबूज	65	56	40
खीरा	80	60	60

नर्सरी की तैयारी व रोपाई

एक हैक्टर क्षेत्रफल के लिए नर्सरी तैयार करने हेतु संकर तथा अन्य किस्मों के लिए क्रमश: 200-250 ग्राम एवं 350-400 ग्राम बीज पर्याप्त होते हैं। बीज उपचार थीरम या कैप्टॉन 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से करें। पौधशाला में पौध उठी हुई क्यारियों में तैयार करें। क्यारियों का आकार लगभग 3×0.6 मीटर रखें। बीजों की बुआई पंक्तियों में 1.5-2.0 सें.मी. गहराई पर करें। बुआई के बाद बीजों को मृदा व गोबर की खाद के मिश्रण से ढककर हजारे से हल्की सिंचाई करें, जिससे नमी बनी रहे और बीजों का समान अंकुरण हो सके। लगभग 35-40 दिनों में पौध रोपाई योग्य हो जाती है। ग्रीष्मकालीन टमाटर की रोपाई मार्च में कर देनी चाहिए और फसल मई के अंत या जून के प्रथम सप्ताह में तैयार हो जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में रोपाई का उपयुक्त समय अप्रैल से जून के मध्य होता है। पंक्ति से पंक्ति 45-60 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30-45 सें.मी. रखें। पौध रोपाई का कार्य सायंकाल करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें। बुआई से पहले 20-25 टन/हैक्टर अच्छी सड़ी गोबर की खाद दें। नाइट्रोजन 120 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 100 कि.ग्रा. तथा पोटाश 80 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय दें। शेष नाइट्रोजन रोपाई के लगभग 45 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें।

खरपतवार नियंत्रण

पहली दो सिंचाइयों के बाद हल्की निराई-गुड़ाई करें। रासायनिक नियंत्रण के लिए पेण्डीमेथीलिन (30 ई.सी.) 400 मि.ली. प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में घोलकर रोपाई से पहले छिड़काव करें।

प्याज एवं लहसुन

प्याज में आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करें। रोपाई के लगभग 45 दिनों बाद प्रति हैक्टर 72 कि.ग्रा. यूरिया की दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें।

प्याज की फसल को पर्पल ब्लॉच रोग से बचाव हेतु 0.2 प्रतिशत मैंकोजेब का छिड़काव करें। यदि थ्रिप्स कीट का प्रकोप हो, तो 0.6 मि.ली. फॉस्फामिडॉन, 1.5 मि.ली. नुवाक्रॉन, 0.5 मि.ली. साइपरमेथ्रिन, 75 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. या 175 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

इस माह प्याज एवं लहसुन की फसल तेजी से तैयार होती है, अत: फसल पर विशेष ध्यान दें। तैयार होती फसल के लिए खेत की मृदा भुरभुरी होनी चाहिए, इसलिए निराई-गुड़ाई कर खेत को नरम बनाए रखें।

बागवानी फसलें

नीबू

यदि फरवरी में उर्वरक नहीं दिया गया हो, तो इस माह उर्वरक का प्रयोग कर सकते हैं।

अमरूद

अमरूद के नए पौधों की रोपाई की जा सकती है। नवरोपित अमरूद, आंवला, आम, कटहल, पपीता एवं लीची के पौधों की नियमित सिंचाई करें।

पपीता, आम एवं अमरूद

बगीचों की अच्छी तरह सफाई करें। आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं खाद का प्रयोग करें। अमरूद में उकठा (विल्ट) रोग के नियंत्रण हेतु 30 ग्राम बाविस्टिन को 15 लीटर पानी में घोलकर प्रति पौधा जड़ों में डालें।

केला

प्रति पौधा 25 ग्राम नाइट्रोजन 40-50 सें.मी. दूरी पर गोलाई में डालें। इसके बाद चारों ओर निराई-गुड़ाई करके खाद को मृदा में मिला दें तथा सिंचाई करें।

आंवला

कंचन, कृष्णा, नरेंद्र आंवला-6, नरेंद्र आंवला-7 तथा नरेंद्र आंवला-10 किस्में अनुशंसित हैं। बीजों को बोने से 12 घंटे पहले पानी में भिगो दें, जो बीज पानी में तैरने लगें, उन्हें अलग कर दें।

अंगूर

मुख्य शाखा से अनावश्यक पत्तियों को हटा दें तथा लता को जाल पर व्यवस्थित करें। फलों का आकार एवं वजन बढ़ाने के लिए 50-60 प्रतिशत फूल खिलने की अवस्था पर 30-40 मि.ली. जिब्रेलिक अम्ल प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि फसल में रोग या कीट का प्रकोप दिखाई दे, तो कृषि वैज्ञानिक की सलाह के अनुसार उपचार करें।

लीची

फल लगने के एक सप्ताह बाद प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./4.8 लीटर पानी) या एन.ए.ए. (20 मि.ग्रा./लीटर) का छिड़काव करने से फलों का झड़ना कम होता है। फल लगने के 15 दिनों बाद बोरिक अम्ल (2 ग्राम/लीटर) या बोरेक्स (5 ग्राम/लीटर) के घोल का 15 दिनों के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करने से फल झड़ना कम होता है, मिठास में वृद्धि होती है तथा फल का आकार और रंग बेहतर होता है। इसके साथ ही फल फटने की समस्या भी कम हो जाती है।

लीची

बेर

फल मक्खी के नियंत्रण के लिए मैलाथियॉन (50 ई.सी.) 200 मि.ली. को 200 लीटर पानी में घोलकर उसमें 2 कि.ग्रा. गुड़ मिलाएं और एक सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव करें।

पपीता (नर्सरी प्रबंधन)

गर्मियों में पपीते की नर्सरी के लिए रोग एवं कीट-मुक्त, स्वस्थ मृदा का चयन करें। क्यारी की अच्छी तरह जुताई करके मृदा को भुरभुरा बना लें। 5 कि.ग्रा. रेत, 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद और 1 कि.ग्रा. नीम की खली मृदा में मिलाकर क्यारियां बनाएं और उन्हें समतल कर लें। नर्सरी के लिए केवल स्वस्थ और परिपक्व बीज का उपयोग करें। बीजों को लगभग 0.5 सें.मी. गहराई पर, 2.5 सें.मी. बीज-से-बीज दूरी तथा लगभग 7-8 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति दूरी पर बोएं। क्यारी के चारों ओर मेड़ बनाकर फव्वारे से प्रत्येक 2-3 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। पौधों को तेज धूप से बचाने के लिए क्यारी के ऊपर 3-4 फीट ऊंचा छप्पर बनाएं। इस प्रकार बोए गए बीज 15-20 दिनों में अंकुरित हो जाते हैं। पपीते की उन्नत प्रजातियां: हनीड्यू, कूर्ग हनीड्यू, वाशिंगटन, सोलो, को-1, को-2, को-3, सनराइज सोलो, ताइवान, रांची चयन, पूसा डिलीशियस और पूसा नन्हा आदि प्रमुख हैं।

पपीता

बाग प्रबंधन

बागों में पौध रोपण, कटाई-छंटाई तथा खाद-पानी देने का कार्य सामान्यत: पूरा हो चुका होता है। यदि शेष हो तो शीघ्र पूरा करें। मार्च माह में बागों में सिंचाई अवश्य करें।

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

गुलाब

वसंत ऋतु आने पर चारों ओर फूलों की बहार छा जाती है और गुलाब अपने पूरे सौंदर्य पर होता है। गुलाब की फसल में आवश्यकतानुसार छंटाई, निराई-गुड़ाई तथा सिंचाई करना आवश्यक है। गुलाब के खेतों में 10 टन/हैक्टर सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ-साथ छंटाई के बाद 100-200 ग्राम कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट प्रत्येक चार पौधों के समूह की दर से दो बार में दें।

गुलाब

ग्रीष्मकालीन मौसमी फूल

पोर्चुलाका, जीनिया, कोचिया, नारंगी कॉसमॉस, गोम्फ्रीना, सेलोसिया, बालसम, फ्रेंच गेंदा, पेटूनिया, साल्विया, सूरजमुखी तथा वर्बीना आदि के बीज एक मीटर चौड़ी तथा आवश्यकतानुसार लंबी क्यारियां बनाकर बो दें। बीजाई के बाद नियमित सिंचाई करें तथा निराई-गुड़ाई करके खरपतवार निकालते रहें।

कर्तित पुष्प

कर्तित फ्लावर के लिए मुख्यत: जरबेरा, गुलदाउदी, गुलाब, ग्लैडियोलस और रजनीगंधा प्रचलित हैं। गर्मियों में उगने वाले पुष्पीय पौधों के लिए फरवरी-मार्च में बीजारोपण करें।

फूलदार वृक्ष व झाड़ियां

फूलदार पेड़-पौधों, झाड़ियों तथा हेज लगाने का कार्य पूरा कर लें। मई-जून में लगाए जाने वाले घास के लॉन के लिए भूमि की तैयारी मार्च से ही प्रारंभ कर दें।

रजनीगंधा

रजनीगंधा के बल्बों की रोपाई पहले से तैयार क्यारियों में 20-30 सें.मी. दूरी पर करें। फूलों की खेती में रुचि रखने वाले किसान इस महीने रजनीगंधा एवं गुलदाउदी की रोपाई करें तथा रोपाई के बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें।

रजनीगंधा

ग्लैडियोलस

कंद उत्पादन के लिए पौधे को भूमि से 15-20 सें.मी. ऊपर से काटकर छोड़ दें और सिंचाई करें। जब पत्तियां पीली पड़ने लगें, तब सिंचाई बंद कर दें। काला धब्बा रोग की रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन के घोल का छिड़काव करें। चौफर कीट के नियंत्रण हेतु खेत की तैयारी के समय 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर थीमेट 10 जी या कार्बोफ्यूरॉन के दाने मिला दें। यदि चेंपा या थ्रिप्स का प्रकोप हो, तो 0.2 प्रतिशत मेटासिड-50 का छिड़काव करें।

ग्लैडियोलस

कृषि खबरें, देश-विदेश की

विकसित हुई बिना कांटों वाली मछली

मत्स्य पालन कृषि की एक महत्वपूर्ण सहायक गतिविधि है, जो किसानों की आय बढ़ाने के साथ-साथ पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में भी अहम भूमिका निभाती है। इसी दिशा में वैज्ञानिकों द्वारा विकसित 'बिना कांटों वाली मछली' एक बड़ी उपलब्धि मानी जा रही है। हाल ही में चीन के वैज्ञानिकों ने 'गिबेल कार्प' प्रजाति की एक नई किस्म विकसित की है, जिसे 'झोंगके नंबर-6' नाम दिया गया है। यह मछली अपने कम या कांटे न होने के कारण उपभोक्ताओं और मछली उत्पादकों दोनों के लिए लाभकारी साबित हो सकती है।

सामान्यत: मछलियों में मौजूद छोटे-छोटे कांटे उपभोक्ताओं के लिए परेशानी का कारण बनते हैं। कई बार खाने के दौरान ये कांटे गले में फंसने या चोट लगने का जोखिम भी बढ़ा देते हैं। एक सामान्य मछली में 80 से अधिक सूक्ष्म कांटे हो सकते हैं। इसी समस्या के समाधान के लिए वैज्ञानिकों ने छह वर्षों तक गहन शोध कर मछली के जीनोम का अध्ययन किया। इस प्रक्रिया में उस विशेष जीन की पहचान की गई, जो हड्डियों और कांटों के निर्माण के लिए जिम्मेदार होता है।

वैज्ञानिकों ने जीन फेरबदल तकनीक का उपयोग करते हुए भ्रूण अवस्था में ही इस जीन को निष्क्रिय कर दिया। परिणामस्वरूप विकसित हुई मछली में कांटों की संख्या अत्यंत कम हो गई, जिससे इसका उपभोग अधिक सुरक्षित और सुविधाजनक बन सका। इसके अलावा, इस नई किस्म की वृद्धि दर, रोग प्रतिरोधक क्षमता और मांस की गुणवत्ता भी संतोषजनक पाई गई है। कृषि और मत्स्य पालन क्षेत्र के लिए यह नवाचार कई अवसर लेकर आया है। बिना कांटों वाली मछली की बाजार में मांग अधिक होने की संभावना है।

भविष्य में यदि इस तकनीक का सुरक्षित और जिम्मेदार तरीके से विस्तार किया जाए, तो यह मत्स्य उत्पादन को नई दिशा दे सकती है। इससे न केवल उपभोक्ताओं को बेहतर गुणवत्ता का उत्पाद मिलेगा, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भी यह तकनीक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। ■

रासायनिक उर्वरकों से घट रहे मृदा के लाभकारी सूक्ष्मजीव

खेती में रासायनिक उर्वरकों के लगातार बढ़ते उपयोग से मृदा का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ता जा रहा है। पूर्वांचल क्षेत्र में किए गए एक अध्ययन के अनुसार पिछले डेढ़ दशक में मृदा में मौजूद लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में भारी गिरावट दर्ज की गई है। वर्ष 2010-11 तक एक ग्राम मिट्टी में जहां लगभग तीन करोड़ सूक्ष्मजीव पाए जाते थे, वहीं वर्तमान में यह संख्या घटकर करीब एक करोड़ रह गई है। यह शोध मिर्जापुर के बरकछा स्थित बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू) के दक्षिण परिसर में संचालित कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) के मृदा विज्ञान विभाग द्वारा किया गया है।

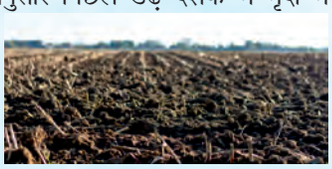

केवीके द्वारा किए गए इस अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि मृदा मित्र सूक्ष्मजीवों की कमी का सीधा प्रभाव गेहूं, धान और विशेष रूप से दलहन फसलों की उत्पादकता पर पड़ रहा है। मृदा वैज्ञानिकों के अनुसार राइजोबियम, एजोबेक्टर और एजोस्पाइरिलम जैसे सूक्ष्मजीव वायुमंडल से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों और मृदा को पोषण प्रदान करते हैं। ये मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ाकर उसकी संरचना, जल धारण क्षमता और उर्वराशक्ति में सुधार करते हैं। विशेषज्ञों ने किसानों को जैविक खाद से तैयार कंसोर्शिया के उपयोग की सलाह दी है। यह विभिन्न लाभकारी सूक्ष्मजीवों का समुच्चय होता है, जो मृदा की जैविक सक्रियता को बढ़ाता है। साथ ही फसलचक्र अपनाना, दलहनी फसलों का समावेशन और जैविक खेती पद्धतियों को अपनाना मृदा स्वास्थ्य सुधारने के प्रभावी उपाय हैं।

यदि समय रहते रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण नहीं किया गया, तो भविष्य में खाद्यान्न उत्पादन पर गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है। इसलिए टिकाऊ कृषि के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान और किसानों की सहभागिता अत्यंत आवश्यक है। ■

पैदावार बढ़ रही लेकिन घट रहा पोषण

पर्यावरण में लगातार बढ़ रही कार्बन डाइऑक्साइड (सीओ$_2$) की मात्रा केवल जलवायु को ही नहीं, बल्कि हमारे आहार की गुणवत्ता को भी गंभीर रूप से प्रभावित कर रही है। नीदरलैंड्स की लीडेन यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं द्वारा किए गए एक व्यापक अध्ययन में यह चौंकाने वाला निष्कर्ष सामने आया है कि बढ़ते सीओ$_2$ स्तर के कारण फसलों की पैदावार तो बढ़ रही है, लेकिन उनमें मौजूद आवश्यक पोषक तत्व तेजी से घटते जा रहे हैं। इससे आहार अधिक कैलोरी वाला, पर कम पौष्टिक बनता जा रहा है।

शोधकर्ताओं के अनुसार, अधिक कार्बन डाइऑक्साइड पौधों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया को तेज करती है, जिससे अनाज और फसलों का आकार और उपज बढ़ती है। हालांकि, इसी प्रक्रिया के दौरान जिंक, आयरन और प्रोटीन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का अनुपात कम हो जाता है। 'ग्लोबल चेंज बायोलॉजी' जर्नल में प्रकाशित इस शोध में वैज्ञानिकों ने भारत सहित 15 देशों में किए गए अध्ययनों की तुलना की, जिसमें धान, गेहूं, आलू, टमाटर और दालों सहित 43 प्रमुख फसलों और करीब 60,000 मापों का विश्लेषण किया गया।

शोध में यह भी सामने आया कि चने में जिंक की मात्रा 37.5 प्रतिशत तक घट गई, जबकि सोयाबीन में रुबिडियम जैसे तत्व 31.7 प्रतिशत तक बढ़ गए। यदि समय रहते खेती के तरीके नहीं बदले गए, तो यह समस्या और गंभीर हो जाएगी। भारत जैसे देशों पर इसका प्रभाव अधिक पड़ सकता है, जहां बड़ी आबादी धान और गेहूं पर निर्भर है। पूर्व अध्ययनों के अनुसार वर्ष 2050 तक भारत में करोड़ों लोग जिंक और प्रोटीन की कमी का सामना कर सकते हैं। ऐसे में पोषण संवेदनशील खेती और जलवायु-अनुकूल कृषि नीतियों को अपनाना समय की आवश्यकता बन गई है। ■

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹50

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा